राष्ट्रभाषा हिंदी

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

संस्करण : 2017
प्रतियाँ :

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक :

भूमिका

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय को सूल ।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिंदी भाषा हमारे देश की राष्ट्रभाषा है । क्योंकि हमारे देश में यह भाषा सबसे अधिक बोली जाती है । इसकी लिपि पूर्णतः वैज्ञानिक है । परन्तु फिर भी आजकल अधिकतर व्यक्ति हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेज़ी को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि हमारे कार्यालयों, न्यायालयों, डॉक्टरी, इंजीनियरिंग की पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा में ही उपलब्ध हैं । अधिकतर विद्यार्थी इसका अध्ययन इसलिये भी करते हैं कि इसका सीधा सम्बन्ध रोटी-रोज़ी के साथ है । पहले 5वीं कक्षा से इसका अध्ययन स्कूलों में करवाया जाता था परन्तु आज प्री-नर्सरी से ही इसे बच्चों को पढ़ाना आरम्भ कर दिया गया है । यह हमारे लिये अभिशाप एवं मानसिक दासता का प्रतीक है और भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात भी है । अंग्रेज़ यहाँ से चले गये परन्तु अंग्रेज़ी छोड़ गये । इसका अर्थ यह नहीं कि मैं अंग्रेज़ी के अध्ययन के विरुद्ध हूँ परन्तु हमें अंग्रेज़ी की अपेक्षा हिन्दी को प्राथमिकता देनी चाहिये । जहाँ पर आवश्यक हो अंग्रेज़ी भी कार्य में लानी चाहिए तभी देश में एकता हो सकेगी ।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार कपूर जी, सत्यपाल मोदी जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, जय किशन जी, नरेश बंसल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी । विशेषतः प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार कपूर जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है ।

मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता ।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका, उसका भी मैं कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है, परन्तु अल्पज्ञ एवं अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा ।

मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 17.8.2015

(धर्मपाल कपूर)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

राष्ट्रभाषा हिंदी भारत की आन-मान और शान है । यह माता के दूध के समान पवित्र और पावन है । चौदह सितम्बर को भारत में हिंदी-दिवस मनाया जाता है जो किसी भी उत्सव से कम नहीं है ।

प्रस्तुत पुस्तक में अग्रज श्री धर्मपाल कपूर ने राष्ट्रभाषा हिंदी को गागर में सागर समाहित करने का सफल प्रयास किया है । हिंदी साहित्य के उद्‌भव एवं विकास से ही राष्ट्रभाषा हिंदी गंगा की लहरों की भाँति निरन्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हुई । हिंदी साहित्य का इतिहास इस बात का द्योतक है कि आदिकाल से आधुनिक काल तक हिंदी सतत् उन्नति की ओर अग्रसर हुई । विशेष रूप से आधुनिक काल में गद्य-पद्य की दृष्टि से राष्ट्रभाषा हिंदी को प्रौढ़ता एवं परिपक्वता के नये आयाम मिले । राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास में आर्य समाज, सिक्ख, जैनियों, बौद्धों, ईसाइयों, मुसलमानों, अंग्रेज़ों आदि का आशातीत योगदान रहा । भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री 'भारतरत्न की उपाधि से अलंकृत श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सर्वप्रथम यू०एन०ओ० में हिन्दी में भाषण करके समस्त विश्व को आश्चर्यचकित एवं राष्ट्रभाषा हिंदी को विश्व में गौरवान्वित किया । वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्रमोदी भी इसके प्रचार एवं प्रसार में सराहनीय योगदान दे रहे हैं । क्योंकि तभी महात्मा गांधी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना देश गूंगा है ।

लेखक एवं प्रकाशक की इस सारगर्भित पुस्तक में भाषा-शैली सरलता, सरसता, प्रवाहमयता देखते ही बनती है । भाषा इतनी सरल एवं मुहावरेदार है मानो किसी माली ने फूलों का सुन्दर गुलदस्ता बना दिया हो । प्रस्तुत पुस्तक सभी साहित्य प्रेमियों के लिये आलोक दर्शन

सिद्ध होगी । विषय वस्तु एवं उद्देश्य की दृष्टि से लेखक के परिश्रम और ईमानदारी की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । ईश्वर करे कि वह ऐसे ही सद्साहित्य पर अपनी लेखनी चलाते रहें । ईश्वर उन्हें दीर्घायु दें ताकि वह अपनी इस महती उद्देश्यपूर्ति में लेखनी चलाकर अन्धकार रूपी जगत् को अपनी रचनाओं के प्रकाश से सर्वत्र प्रकाशित करते रहें । क्योंकि निराला जी ने उचित ही कहा है–

अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है ।
है मुर्दा वह देश जहाँ साहित्य नहीं है ।

तिथि : 23.1.2016 ई०

प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार कपूर
भूतपूर्व अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
श्री विष्णु सनातन धर्म
स्नातकोतर महाविद्यालय
अटोली, जिला ऊना (हि.प्र.)

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	हिंदी का उद्‌भव एवं विकास	1
2.	राष्ट्रभाषा हिंदी	23
3.	राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर	29
4.	अंग्रेज़ी भक्तों का घातक रूप	43
5.	आखिर हिंदी ही क्यों राष्ट्रभाषा बने?	47
6.	हिंदी के विकास में मुसलमानों, सिक्खों एवं ईसाइयों का योगदान	52
7.	हिंदी के विकास में आर्यसमाज का योगदान	55
8.	राष्ट्रभाषा हिंदी के सम्बन्ध में विभिन्न महापुरुषों के विचार	65
9.	हिंदी भाषा के विकास के मुख्य उपाय	68
10.	हिंदी भाषा का विश्व भाषा बनने का सपना	72
11.	हिंदी को हिंदी वालों ने अंग्रेज़ी का दास बनाकर रख दिया	76

1. हिंदी का उद्‌भव एवं विकास

हिंदी के उद्‌भव काल के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। जहाँ शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी का उद्‌भव सातवीं शती के आसपास मानते हैं। वहाँ डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा व अन्य कतिपय विद्वान् दसवीं शताब्दी से मानते हैं। इनमें से प्रथम वर्ग के विद्वान् तो हिंदी के अन्तर्गत अपभ्रंश को ही सम्मिलित कर लेते हैं। अतः उनका मत हिन्दली के स्थान पर अपभ्रंश से संबंधित मानना चाहिए। दूसरे वर्ग के विद्वानों ने अपने मत की पुष्टि में यथेष्ट प्रमाण नहीं दिये हैं। प्रायः उन्होंने 'अनुमान' के आधार पर ही और शायद इसलिए भी हिंदी-साहित्य का आविर्भाव इसी समय से माना जाता है। दसवीं शताब्दी से हिंदी का उद्‌भव मान लिया है। इनकी भ्रान्ति का एक कारण यह भी रहा है कि इनके सामने हिंदी की कुछ कृतियाँ थीं जो उस समय 18वीं शती में रचित मानी जाती थीं। परन्तु अब वे बहुत परवर्ती सिद्ध हो चुकी हैं। अस्तु, इस मत को भी मान्यता नहीं दी जा सकती।

इस संबंध में एक अन्य वर्ग ऐसे विद्वानों का भी है जिन्होंने शुद्ध भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करते हुए हिंदी का उद्‌भव-काल तेरहवीं शती के बाद सिद्ध किया है। इनमें डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० नामवर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ० चटर्जी इस संबंध में लिखते हैं –

> **यह मालूम नहीं पड़ता कि हिंदी ठीक-ठीक कौन सी बोली थी। परन्तु सम्भव है कि यह ब्रज भाषा या पाश्चात्यकालीन हिन्दुस्तानी के सदृश्य न होकर 13वीं शती में प्रचलित सर्वसाधारण की साहित्यिक अपभ्रंश ही रही हो, क्योंकि इस काल में हमें हिंदी या हिन्दुस्तानी का दर्शन नहीं होता।**

डॉ० उदयनारायण तिवारी उपर्युक्त सम्भावना की पुष्टि अधिक स्पष्ट शब्दों में करते हैं। आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् 13वीं शती के आरम्भ में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अभ्युदय के समय 15वीं शती से पूर्व तक का काल संक्रान्ति काल था, जिसमें भारतीय आर्यभाषा धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थी। इसी प्रकार डॉ० नामवर सिंह के विचार से भी 13वीं शताब्दी तक जाते-जाते अपभ्रंश के सहारे ही पूर्व और पश्चिम के देशों ने अपनी-अपनी बोलियों का स्वतंत्र रूप प्रकट किया था। अतः हिंदी का उद्भव यहीं से माना जा सकता है। यद्यपि डॉ० तिवारी संक्रान्तिकाल की अन्तिम सीमा 15वीं शताब्दी तक खींचते हैं, फिर भी ये तीनों विद्वान् उसकी आरम्भिक सीमा 13वीं से ही मानते हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी प्रत्यक्ष रूप से इसी मत का अनुमोदन करते हुए लिखा है –

हेमचन्द्राचार्य ने दो प्रकार की अपभ्रंश भाषाओं की चर्चा की है। दूसरी श्रेणी की भाषा को हेमचन्द्र ने ग्राम्य कहा है। वस्तुतः यही भाषा आगे चलकर आधुनिक देशी भाषाओं के रूप में विकसित हुई।

यद्यपि द्विवेदी जी ने यहाँ आगे चलकर काल-परिणाम नहीं दिया। फिर भी यदि उसका तात्पर्य एक शताब्दी भी लें तो उनके विचारानुसार हिंदी का आविर्भाव आचार्य हेमचन्द्र के एक सौ वर्ष बाद अर्थात् 13वीं शती से होता है। अस्तु, आचार्य द्विवेदी के मत को भी जहाँ तक भाषा के आविर्भाव काल का संबंध है इसी वर्ग में स्थान दिया जा सकता है। यह दूसरी बात है कि हिंदी-साहित्य के आदिकाल का आरम्भ वे दसवीं शताब्दी से मानते हैं।

उपर्युक्त मतों के अनुसार यदि हिंदी भाषा का उद्भव 13वीं शती से माना जाये तो उसके साहित्य का आरम्भ अवश्य ही उसके 200 वर्ष बाद से माना जायेगा। क्योंकि कोई भी भाषा साहित्य में स्थान पाने में एक दो शताब्दियों का समय अवश्य ले लेती है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य का आरम्भ 14वीं-15वीं शती से सिद्ध होता है

परन्तु यह ठीक नहीं है । हमें इससे पूर्व ही हिंदी-साहित्य के अस्तित्व के अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनकी चर्चा आगे की जायेगी । हमारे विचार से हिंदी का उद्‌भव थोड़ा और पहले से ही माना जाना चाहिए । अतः इस विषय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है ।

जैसा कि विभिन्न विद्वानों ने स्वीकार किया है, अपभ्रंश के उत्तर काल में उसके दो मुख्य भेद विकसित हो गये थे—एक उसका परिनिष्ठित साहित्यिक रूप एवं दूसरा लोक-सम्पर्क से विकसित ग्राम्य रूप । इस ग्राम्य रूप के भी प्रदेश-भेद के अनुसार तीन भेद हो गये थे—पूर्वी, पश्चिमी एवं मध्यदेशीय । इन्हीं भेदों से उत्तरी भारत की अनेक आधुनिक भाषायें विकसित हुई हैं, जिनमें हिंदी (अर्थात् राजस्थानी, मैथिली, अवधि आदि) भी एक हैं । इन आधुनिक भाषाओं का विकास कब हो गया था, इसका पता लगाने का कोई निश्चित् साधन प्राप्त नहीं है । फिर भी कुछ ऐसे ग्रंथ मिलते हैं, जिनके आधार पर यह निश्चिततापूर्वक कहा जा सकता है कि हिंदी के कुछ रूपों का आविर्भाव 12वीं शती के पूर्व हो गया था । इन ग्रंथों में 'उक्ति व्यक्ति प्रकारण', गाहड़वाल नरेश गोबिन्द चन्द्र के सभा-पंडित दामोदर की रचना है जिसमें लोकभाषा को संस्कृत में रूपान्तरित करने की पद्धति पर प्रकाश डाला गया है । इनके रचयिता ने भूमिका में अपना प्रयोजन स्पष्ट करते हुए लिखा है, उसका लक्ष्य अपभ्रंश को पुनः संस्कृत में परिवर्तित करना है । जिस प्रकार एक पतिता ब्राह्मणी को प्रायश्चित के द्वारा पुनः ब्राह्मणीत्व प्रदान किया जा सकता है । वैसे ही तुर्कों के द्वारा भ्रष्ट एवं सर्वजन साधारण की भाषा को पुनः संस्कृत रूप दिया जा सकता है । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भाषा के शताधिक नमूने प्रस्तुत किये हैं, जो हिंदी के आरम्भिक रूप को सूचित करते हैं । जैसे कुछ वाक्य द्रष्टव्य है—

'गंगा न्हाए धर्म हो पापुजा ।

जस-जस धर्मु बाढ़, तस-तस पाप घाट ।'

यद्यपि पुस्तक के रचयिता ने इन्हें 'अपभ्रंश' का ही नाम दिया है, किन्तु व्याकरण एवं शब्द-रूपी दृष्टि से ये उदाहरण निश्चित् रूप से पूर्वी हिंदी के हैं । डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा अन्य कतिपय विद्वानों

ने भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इनकी परीक्षा करते हुए इन्हें पूर्वी हिंदी के उदाहरणों के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु उस समय हिंदी नाम बाहर से आने वाले मुसलमानों में ही प्रचलित था। दामोदर जैसे संस्कृत के विद्वानों की दृष्टि में तो अपभ्रंश का नया विकसित रूप भी अपभ्रंश ही था—जो स्वयं उनके शब्दों में 'तुर्कों द्वारा भ्रष्ट' भाषा थी। उसका नया नाम हिंदी स्वीकार करने के लिए वे अभी तैयार नहीं थे। अस्तु, पंडित दामोदर ने भले ही इन उक्तियों को 'हिंदी' नाम न दिया हो, किन्तु वे इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि ईसा की 12वीं शती के मध्य तक मध्यप्रदेश में हिंदी के आरम्भिक रूप का भली-भाँति विकास हो चुका था।

इसी प्रकार आचार्य हेमचन्द्र ने अपने 'प्राकृत व्याकरण' में जिस 'ग्राम्य अपभ्रंश' का उल्लेख किया है वह भी पश्चिमी हिंदी या राजस्थानी का ही आरम्भिक रूप प्रतीत होता है। सामान्यतः जब कोई भाषा पर्याप्त महत्वपूर्ण हो जाती है, तभी वह वैयाकरणों के द्वारा मान्यता प्राप्त करती है। अतः 'ग्राम्य अपभ्रंश' का हेमचन्द्राचार्य द्वारा उल्लेख होना ही इस बात का प्रमाण है कि वह इससे पूर्व ही परिनिष्ठित अपभ्रंश से इतनी भिन्न हो गई थी कि हेमचन्द्र को उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार करनी पड़ी। इतना ही नहीं, हेमचन्द्राचार्य ने इसमें रासक, डोम्बिका जैसे साहित्य के रचे जाने की बात भी कही है। अतः इस 'ग्राम्य अपभ्रंश' या राजस्थानी का उद्‌भव हेमचन्द्राचार्य के बाद नहीं, अपितु उससे कुछ पहले ही स्वीकार करना होगा। इस दृष्टि से उसका उद्‌भव काल लगभग 11वीं या 12वीं शती का आरम्भकाल माना जा सकता है।

आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण में देशी शब्दों की सूची दी गई है, जिसमें बहुत से शब्द ऐसे आये हैं, जो राजस्थानी या पश्चिमी हिंदी के आरम्भिक रूप को सूचित करते हैं। जैसे— कुम्भार, खम्भो, खोड़ि, गड्‌डो, गाई, डुंगर, दुवार, नाव, पराई, पिआस, रस्सी, संज्ञा, हलद्दी आदि। साथ ही 'प्राकृत-व्याकरण' में उद्‌धृत अनेक पद्यों की भाषा भी हिंदी के पर्याप्त निकट है। जैसे—

तिरि जर-खण्डी लोअड़ी गलि मणियडा न बीस ।
तो वि गोट्ठड़ा करावािआ मुद्धएँ उट्ठबईस ।।
हिअड़ा जइ वेरिअ घणा जो कि अडिम चड़ाहुँ ।
अम्हाहिं वे हत्थड़ा जइ पुणु चारि मराहुँ ।।

उपर्युक्त पद्यों के मोटे टाइप में अंशों की भाषा को निःसकोच रूप में आरम्भिक हिंदी कहा जा सकता है ।

11वीं से 13वीं शती तक की कुछ रचनाएँ और भी प्राप्त हैं, जिनमें हिंदी के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है । इनमें रोड़ाकृत राउलवेल (11वीं शती), भरतेश्वर बाहुबलि रास (1184 ई०), रेवंतगिरि रास (1231ई०) शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी (1173-1265 ई०) का कलाम, चक्रधर स्वामी (1194-1274 ई०) के पद आदि उल्लेखनीय हैं । राउलवेल एक शिलांकित काव्य है जिसमें विभिन्न प्रदेशों की नायिकाओं का वर्णन करते हुए उनकी बोलियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं । डॉ० हरिवल्लभ भायाणी एवं डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इस शिलालेख का लिपि काल ईसा की 11वीं शती निश्चित् किया है । जैसे–

धवल र कापड़ औढिअल कइसे ।
मुह ससि जोंन्ह पसारेल जइसे ।।
पहिरणु घाघरेहिं जे केरा ।
कच्छड़ा बछड़ा डहिं पर इतरा ।। (टक्किणी)
एहु कानोडउं काइ सउ झांखइ ।
वेस अम्हाणउं ना जाउ देखई ।।
हांस गइ जा चालती अइसी ।
सा वाखर णहु राउल कइसी ।। (राजस्थानी)

उपर्युक्त उद्धरण विभिन्न प्रदेशों की आधुनिक भाषाओं के आरम्भिक रूप के प्रामाणिक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, तथा वे इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि इस शिलालेख के लिपि काल के समय आधुनिक भाषाओं का आविर्भाव हो चुका था, भले ही अभी उनका सम्यक् विकास न हुआ हो ।

12वीं-13वीं शती में रचित कतिपय रासों काव्यों में भी हिंदी के आरम्भिक रूप के दर्शन होते हैं। इनमें 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' (1184 ई०) एवं रेवंत गिरिरास (1231 ई०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हिंदी के इतिहासकारों का स्थान अभी तक इन ग्रंथों की ओर नहीं गया, किन्तु गुजराती के विद्वानों ने इन्हें गुजराती की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। जैसा कि इस विषय पर शोधकर्त्ता डॉ० हरीश ने स्पष्ट किया है। इस युग में गुजराती और राजस्थानी का भेद स्पष्ट नहीं हो पाया था। अतः इन रचनाओं की भाषा को जितनी दृढ़ता से गुजराती बताया जा सकता है, उतनी ही दृढ़ता से राजस्थानी या हिंदी भी कहा जा सकता है। जैसे–

हा ! कुल मंडण हा कुल बीर।
हा ! समरंगणि साहस धीर।।
कहिं कुण ऊपरि कीजइ रोसु।
एहु जि दीअइ दैवह रोसु।। (भरतेश्वर बाहुबलिरास)

अस्तु, उक्ति व्यक्ति, प्रकरण, प्राकृत-व्याकरण राउलवेल काव्य और विभिन्न आरम्भ रासो काव्य 11वीं शती से लेकर 13वीं शती तक की हिंदी के विभिन्न रूपों के नमूने प्रस्तुत करते हैं तथा इनके आधार पर वह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि इस अवधि में हिंदी का उद्भव व विकास हो चुका था। इन साक्ष्यों के अतिरिक्त भी बहुत सी रचनाएं मिलती हैं, जो इसी युग की बताई जाती हैं। किन्तु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है, अतः यहाँ उनका उल्लेख करना अनावश्यक है।

कोई भी भाषा अपने आविर्भाव के साथ ही साहित्य में स्थान नहीं प्राप्त कर लेती। अतः हिंदी भाषा के उद्भव काल (1100 ई०) को ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव काल नहीं माना जा सकता। इसके लिए हमें यह देखना होगा कि हिंदी की प्रथम साहित्यिक रचना या उसका रचयिता कौन है, जिसके आधार पर हिंदी के आविर्भाव-काल का निर्णय किया जा सकता है। हिंदी का प्रथम कवि किसे कहा जाये, इस संबंध में अभी तक कोई निश्चित् या

सर्वमान्य मत प्राप्त नहीं है। आरम्भ में शिवसिंह सेंगर एवं मिश्रबन्धुओं ने पुष्य नाम के कवि को हिंदी का प्रथम कवि घोषित किया था। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि यह पुष्य कोई और नहीं, अपभ्रंश के ही प्रसिद्ध कवि पुष्पदंत हैं, जिन्हें हिंदी का कवि नहीं माना जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संबंध में कोई स्पष्ट निर्णय तो नहीं दिया, किन्तु उन्होंने अपने इतिहास में एक ओर अपभ्रंश कवियों में सर्वप्रथम देवसेन का तथा दूसरी ओर 'वीरगाथा' शीर्षक अध्याय में दलपति विजय का उल्लेख किया है, तथा इनका समय नवीं-दसवीं शती माना है। यह भी विचित्र बात है कि आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य का आरम्भ इन कवियों के रचना-काल से न मानकर इनके लगभग सौ वर्ष बाद से मानते हैं। ऐसी स्थिति में यह संदिग्ध है कि आचार्य शुक्ल किसे हिंदी का प्रथम कवि मानते थे। फिर भी उपर्युक्त दोनों कवियों में से एक अपभ्रंश का है तथा दूसरा 18वीं शती का सिद्ध हो चुका है। अतः इनमें से किसी को भी हिंदी के प्रथम कवि के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

डॉ० रामकुमार वर्मा सिद्ध कवियों के काव्य में हिंदी-कविता के आदि रूप का अस्तित्व मानते हुए सरहपा (817 ई०) को प्रथम कवि मानते हैं। परन्तु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, सिद्धों का साहित्य अपभ्रंश में है, हिंदी में नहीं। अतः इस मत को भी स्वीकार करना कठिन है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आरम्भिक साहित्य को प्रामाणिक, संदिग्ध एवं अर्द्ध प्रामाणिक रचनाओं के रूप में वर्गीकृत करते हुए प्रामाणिक रचना के रूप में सर्वप्रथम 'संदेह रासक' की चर्चा की है। किन्तु जैसा कि वे अन्यत्र स्वीकार करते हैं, इसकी भाषा अपभ्रंश है। इसी प्रकार अर्द्ध प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक रचनाओं की भी स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है कि जिससे उनमें से किसी को हिंदी की प्रथम रचना माना जा सके। इसी प्रकार आचार्य द्विवेदी के द्वारा भी स्पष्ट उत्तर प्राप्त नहीं होता।

'बीसलदेव रासो' के रचयिता नरपति नाल्ह, अमीर खुसरो, विद्यापति आदि का भी समय-समय पर कुछ लोगों के द्वारा हिंदी के

प्रथम कवि के रूप में उल्लेख होता रहा है, किन्तु इनमें से कुछ की तो रचनाओं का वर्तमान रूप एवं रचना काल ही संदिग्ध है, जब कि अन्तिम का समय ही 15वीं शताब्दी है जो कबीर के आसपास पड़ता है। अतः इनमें से किसी को भी प्रथम कवि के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता।

इधर जैन-कवियों द्वारा रचित कुछ ऐसे रास काव्य प्रकाश में आये हैं, जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है तथा जिनकी भाषा को हिंदी के आरंभिक रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इन रचनाओं के काल-क्रम तथा भाषा के विकास की दृष्टि से सर्वप्रथम शलिभद्र सूर 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' है, जिसका रचना काल 1184 ई० है। इस कृति का सम्पादन एवं प्रकाशन एक चार-पाँच सौ वर्ष पुरानी तथा अत्यन्त विश्वसनीय प्रति के आधार पर मुनि जिन विजय द्वारा हो चुका है। गुजराती और हिंदी के अन्य विद्वानों ने भी इसे प्रामाणिक माना है। डॉ० हरिशंकर शर्मा 'हरीश' ने इसका विशेष अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इसे हिंदी-जैन साहित्य की रास परम्परा का सर्वप्रथम काव्य माना है। गुजराती के विद्वान् इसे गुजराती का काव्य मानते हैं। किन्तु पन्द्रहवीं शती के पूर्व तक गुजराती और राजस्थानी की दोनों भाषाएं एक ही थी। अतः इस पर दोनों का अधिकार माना जा सकता है। भाषा-शैली की दृष्टि से भी यह रचना प्राचीन एवं प्रामाणिक सिद्ध होती है। इसके कुछ उद्धरण पीछे भाषा के उद्भव के प्रसंग में प्रस्तुत किए जा चुके हैं। जिनसे यह भली-भाँति हिंदी की रचना सिद्ध होती है।

इस रचना की प्रामाणिकता का एक अन्य आधार यह भी है कि यह परम्परा से विछिन्न अकेली रचना नहीं है। अपितु 12वीं शती से लेकर 15वीं-16वीं शती तक इसकी एक अखण्ड परम्परा मिलती है, जिसमें बीसों रासो काव्य आते हैं। इस रचना के कुछ वर्षों बाद ही रचित बुद्धिरास (12वीं शती) , जम्बू स्वामीरास (1209 ई०), जीवदया रास (1200 ई०), चन्दन वाला रास (1200 ई०),

रेवंत-गिरि रास (1231 ई०), नेमिनाथ रास (1238 ई०) गयसुकुमाल रास (1250 ई०) लगभग आदि रचनायें भी मिलती हैं जो रासो-परम्परा के क्रमिक विकास को सूचित करती है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' के रचयिता शालिभद्र सूर को उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर (अब तक उनसे प्राचीन किसी अन्य हिंदी कवि का प्रामाणिक रूप से पता नहीं चलता) हिंदी का प्रथम कवि माना जा सकता है तथा उनके रचना-काल के आधार पर सन् 1184 ई० से हिंदी साहित्य का आविर्भाव-काल निश्चित् किया जा सकता है।

यह काल हिंदी के विकास की दृष्टि से तथा राष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी उपर्युक्त प्रतीत होता है। इस समय तक मुसलमान भारत में आगे तक बढ़ आये थे। हिन्दू राष्ट्र का विघटन एवं पतन हो चुका था जिसके कारण राज्याश्रय में पलने वाले धर्म एवं साहित्य को जनता का संरक्षण एवं जनता की भाषा का माध्यम स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा था। परम्परागत भाषायें—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि साहित्य और व्याकरण के ढांचे में रूढ़ हो चुकी थीं तथा उनका स्थान परवर्ती लोकभाषाएँ ले चुकी थीं। अस्तु, इन सभी दृष्टियों से 12वीं शती के अंतिम चरण से हिंदी-साहित्य का आविर्भाव मानना तर्क-संगत प्रतीत होता है। इससे पूर्व का समय जिसे हिंदी के इतिहासकार आदिकाल, वीरगाथा काल या चारण काल आदि में स्थान देते रहे हैं और जो हिंदी की प्रामाणिक रचनाओं की दृष्टि से शून्य है, हिंदी-साहित्य की काल-सीमाओं के बाहर समझा जाना चाहिए। वस्तुतः हिंदी-साहित्य का उद्‌भव यहीं से होता है।

हमारे विचारानुसार संसार की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृत थी जिसे सब भाषाओं की जननी कहा जाता है। इसके पश्चात् लौकिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंश से हिंदी भाषा का धीरे-धीरे उद्‌भव हुआ क्योंकि भाषा नदी के पानी की भाँति बहता नीर है।

विद्वानों ने हिंदी-भाषा का आरम्भ 1000 ई० से माना है। इस समय तक साहित्य में हिंदी का आंशिक प्रयोग होने लगा था। अपभ्रंश के ग्रंथों में हिंदी के शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति का आरम्भ हो गया था। हिंदी एकाएक तो साहित्य की भाषा बनी नहीं होगी? भाषा-शास्त्र के साधारण नियम के अनुसार पहले उसका रूप साधारण बोलचाल की भाषा का रहा होगा। धीरे-धीरे जनवादी साहित्यकारों ने उसका प्रयोग साहित्य में करना आरम्भ कर दिया होगा। इसलिए हिंदी के विकास-क्रम का विवेचन करने के लिए यह आवश्यक है कि हम 1000 ई० से पहले की हिंदी का रूप समझ लें।

हिंदी का बोलचाल का क्या रूप था? इसका प्रमाण नहीं मिलता परन्तु डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल का अनुमान है—

सम्भवतः ईसवी सन् 778 के पहले से वह बोली जाती रही होगी।

इसके समर्थन में उन्होंने दक्षिणाचार्य चिह्नोद्योतन के 'कुवलयमाला कथा' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में एक हाट का उल्लेख है जिसमें आये हुए देश-विदेश के व्यापारी अपनी-अपनी बोली में माल बेचते थे। मध्यप्रदेश के व्यापारी के मुख से उसने —'तेरे मेरे आउ' कहलाया है। हिंदी मध्यप्रदेश की भाषा है। अतः इस व्यापारी ने मध्यप्रदेश की बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया होगा। इस वाक्य में हिंदी के दो सर्वनाम 'तेरे', 'मेरे' और एक क्रियापद 'आउ' का स्पष्ट प्रयोग हुआ है। हिंदी का बोलचाल का सर्वप्रथम रूप इसी ग्रंथ में मिलता है। सातवीं-आठवीं शताब्दी के पुष्य नामक एक कवि का केवल उल्लेख मिलता है, जिनकी भाषा हिंदी कही गई है। 8वीं और 9वीं शताब्दी में जब धर्म-प्रचारकों ने अपने-अपने धर्मों का प्रचार जनता में करना आरम्भ किया तो उन्होंने इसी बोली को अपना माध्यम बनाया। इससे हिंदी पनपने लगी। पश्चिम में जैन लोगों और पूर्व में वज्रयानी संतों की अपभ्रंश की रचनाओं में जहाँ-तहाँ हिंदी की बोली झलकने लगी। सरहपा का एक पद द्रष्टव्य है—

जहँ मन पवन संचरइ, रवि शशि नाह प्रवेश ।
तहिं बट चित विसराम करु, सरहे कहिअ उदेश ।।

सरहपा का समय 8वीं-9वीं शताब्दी माना गया हैं 990 ई० के लगभग जैन कवि देवसेन सूरि ने इसी भाषा का प्रयोग किया था–

जो जिन सासण भासियउ, सो मइ कहियत सारु ।
जो पाले सह भाव करि, सो तरि पावउ पारु ।

यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि उस समय हिंदी की विभिन्न बोलियाँ–खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखंडी आदि स्थानीय जनसाधारण की बोलचाल की बोलियाँ रही होंगी और साहित्य का निर्माण अपभ्रंश और संस्कृत में होता रहा होगा । परन्तु धीरे-धीरे वे बोलियाँ भी साहित्य में प्रयुक्त होने लगी होगी और इस प्रकार एक नई साहित्यिक भाषा का विकास होता चला गया होगा ।

पुरानी हिंदी

1000 ई० के आसपास रचित अपभ्रंश साहित्य में देशी शब्दों का प्रयोग इतना अधिक होने लगा था कि हेमचन्द्र ने उन्हें 'देशी नाममाला' में संग्रह करना उचित समझा । हिंदी शब्दों की इसी अधिकता को लक्ष्य कर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी विद्वानों ने इस भाषा को 'पुरानी हिंदी के नाम से सम्बोधित किया । अतः हम कह सकते हैं कि 1000 ई० के लगभग साहित्य में हिंदी का प्रयोग होने लगा था । इसलिए हिंदी का विकास इस समय से मानना चाहिए ।

काल विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी-साहित्य का आरम्भ सम्वत् 1050 से माना है । अन्य विद्वान् भी इसी समय को हिंदी-साहित्य का आरम्भिक काल मानते हैं । अतः हिंदी भाषा के विकास-क्रम को देखने के लिए हमें हिंदी-साहित्य के समानान्तर ही चलना पड़ेगा, क्योंकि उससे पूर्व हिंदी का रूप सम्बन्धी कोई स्पष्ट और अधिकाधिक प्रमाण

नहीं मिलता। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने इस विकास के इतिहास को निम्नलिखित तीन कालों में विभाजित किया है :–

1. प्राचीन काल (1000 ई० से 1500 ई० तक) – जब अपभ्रंश तथा प्राकृतों का प्रभाव हिंदी-भाषा पर मौजूद था तथा साथ ही हिंदी की बोलियों के निश्चित् स्पष्ट रूप नहीं हो पाये थे।

2. मध्य काल (1500 ई० से 1800 ई० तक) –जब हिंदी पर से अपभ्रंशों का प्रभाव बिल्कुल हट गया था और हिंदी की बोलियाँ विशेषतः खड़ी बोली, ब्रज और अवधी अपने पैरों पर स्वतंत्रतापूर्वक खड़ी हो गई थी।

3. आधुनिक काल (1800 ई० से आज तक) – जब से हिंदी की बोलियों के मध्यकाल के रूपों में परिवर्तन आरम्भ हो गया तथा साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से खड़ी बोली ने हिंदी की अन्य बोलियों को दबा दिया।

प्राचीन काल (1000 ई० से 1500 ई० तक)

डॉक्टर श्यामसुन्दर दास का मत है–

हेमचन्द्र के समय से पूर्व हिंदी का विकास होने लगा था और चन्द्र के समय तक उसका कुछ-कुछ रूप स्थिर हो गया था। अतएव हिंदी का आदिकाल हम सं० 1050 के लगभग मानते हैं।

इस काल से पूर्व के कई ऐसे ग्रंथकारों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने हिंदी में ग्रंथ लिखे थे इनमें पुष्य कवि (715 ई०) का 'अलंकार शास्त्र' अब्दुल एराकी (870 ई०) का 'क़ुरान का हिंदी अनुवाद' मसऊद सार सालया (900 ई० का 'हिंदी का एक दीवान' कालिंजर के राजा नन्द (1013 ई०) का सुलतान महमूद की प्रशंसा में लिखा 'हिंदी का एक शेर' आदि का उल्लेख किया गया है, परन्तु इन रचनाओं के कोई नमूने नहीं मिलते। हिंदी के प्राचीनतम और सर्वसुलभ ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के विषय में काफी मतभेद है। उसमें भाषा की इतनी मिलावट है कि उसके मूल स्वरूप का पता

लगाना कठिन हो जाता है । कुछ लोग अपभ्रंश की अनेक रचनओं को हिंदी की रचनाएं घोषित कर उन्हें हिंदी-साहित्य के अन्तर्गत शामिल कर लेते हैं । परन्तु यह असंगत है, क्योंकि अपभ्रंश और हिंदी – दो भिन्न भाषाएं थीं । अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' नहीं माना जा सकता ।

तत्कालीन परिस्थितियाँ

जिस समय हिंदी भाषा का विकास हो रहा था, उसी समय उसे एक ऐसा भयंकर धक्का लगा जिससे वह सदियों तक नहीं पनप पाई । इसके लिए हमें तत्कालीन परिस्थिति को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है । हिंदी-भाषा का इतिहास जिस समय से आरम्भ होता है, उस समय हिंदी-प्रदेश तीन राज्यों में विभक्त था–(1) दिल्ली-अजमेर का चौहान वंश, (2) कन्नौज का राठौर वंश, (3) महोबा का परमार वंश । कवि नरपति नाल्ह का अजमेर से, और चन्द कवि का दिल्ली से संबंध रहा था । कन्नौज के अंतिम राजा जयचन्द का दरबार साहित्य चर्चा का मुख्य केन्द्र था, परन्तु वहाँ हिंदी को कोई सम्मान प्राप्त न होकर संस्कृत तथा प्राकृत का ही बोल बाला था । महोबा के राजकवि आल्हा के रचयिता जगनिक का नाम तो आज तक प्रसिद्ध है । इन तीनों राज्यों के संरक्षण में हिंदी पनप रही थी ।

1191 ई० तक इन तीनों राज्यों का अस्तित्व रहा था । परन्तु अगले 10-12 वर्षों में मुहम्मद गोरी ने इन्हें एक-एक कर हरा दिया और इस प्रकार हिंदी के जन्मस्थान मध्य-देश पर विदेशियों का अधिकार हो गया । ''हिंदी-भाषा के इतिहास के सम्पूर्ण प्राचीन-काल में मध्य-प्रदेश पर तथा उसके बाहर शेष उत्तर भारत पर तुर्की मुसलमानों का साम्राज्य कायम रहा (1206 ई० से 1516 ई०) इसकी मातृभाषा तुर्की थी तथा दरबार की भाषा फारसी ।'' अतः इस विदेशी शासन काल के लगभग 300 वर्षों तक, दिल्ली के राजनीतिक केन्द्र रहते हुए भी हिंदी भाषा को राज्य की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला । केवल उत्तर प्रदेश के अमीर खुसरो ने कुछ तो मनोरंजन के लिए और कुछ मुसलमानों में हिंदी का प्रचार करने के उद्देश्य से हिंदी में कुछ रचनायें लिखी । इसी समय पूर्वी भारत में धार्मिक आंदोलनों के

कारण कुछ हिंदी की रचनायें लिखी गई। इस प्रकार के आंदोलनों में गोरखनाथ, रामानन्द तथा कबीर का कार्य विशेष उल्लेखनीय रहा। खुसरो पश्चिमी उत्तर प्रदेश का निवासी था, इसलिए उसकी मुकरियों में खड़ीबोली का प्रयोग होना स्वाभाविक था। क्योंकि खड़ीबोली उसी प्रदेश की भाषा थी। अन्य लोगों ने प्रधानतः ब्रज भाषा को अपनाया था।

आधारभूत सामग्री

हिंदी-भाषा की प्राचीन काल की सामग्री डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार, नीचे लिखे भागों में विभक्त की जा सकती है–

1. शिलालेख, ताम्रपत्र, प्राचीन पत्रादि।

2. अपभ्रंश काव्य।

3. चारण काव्य, जिनका आरम्भ गंगा की घाटी में हुआ था, किन्तु राजनीतिक उथल-पुथल के कारण बाद में जो प्रायः राजस्थान में लिखे गये धार्मिक ग्रंथ व अन्य काव्य ग्रंथ।

4. हिंदी अथवा पुरानी खड़ीबोली में लिखा साहित्य।

हिंदी-भाषा का प्राचीन या आरम्भिक युग, विदेशी शासन का युग था। अतः उस काल के हिन्दू राजाओं द्वारा शिलालेख आदि खुदाये जाने की संभावना अपेक्षाकृत कम रही है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल तथा राहुल सांकृत्यायन ने नाथपंथ तथा वज्रयानी सिद्ध-साहित्य पर प्रकाश डालकर अनेक ग्रंथों का पता लगाया है। इनमें से कई बहुत प्राचीन हैं। इनके रचयिताओं का समय 700 ई० से 1300 तक माना गया है। कुछ विद्वान् इनकी प्रामाणिकता में भी सन्देह करते हैं। इनकी भाषा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो चुका है कि इन सिद्धों की भाषा हिंदी न होकर स्पष्ट रूप से अपभ्रंश (मागधी) है। इस साहित्य का परिचय हरिप्रसाद शास्त्री के 'बौद्धगान दोहा' नामक ग्रंथ में मिला था।

पुरानी हिंदी : चारण काल

गुलेरीजो ने 'पुरानी हिंदी' के नाम से प्राचीन भाषा के कुछ उदाहरण संकलित किये हैं परन्तु इन पर राजस्थानी का प्रभाव अधिक है। दूसरे इनकी भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें हिंदी के अन्तर्गत न मानकर अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत माना है। इन उदाहरणों से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि हिंदी-भाषा का विकास होने से पूर्व उसका क्या रूप था। उस समय वह साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही थी। इस काल की भाषा का तीसरा रूप चारण, धार्मिक तथा लौकिक ग्रंथों में सुरक्षित माना जाता है। चारण-काव्यों की भाषा भाषा शास्त्र की दृष्टि से संदिग्ध मानी गई है। इस भाषा को उस काल की भाषा नहीं माना जा सकता। क्योंकि गेय काव्य होने के कारण इसके भाषा-रूपों में निरन्तर परिवर्तन होते रहे हैं।

अनेक कारणों से लगभग सभी चारण-ग्रंथ अप्रामाणिक घोषित किये जा चुके हैं। परन्तु उसमें कहीं-कहीं प्राचीन भाषा के कुछ नमूने अवश्य मिल जाते हैं। इन ग्रंथों की भाषा उतनी प्राचीन इस कारण नहीं मानी जाती कि उसमें हिंदी की उस अवस्था के लक्षण नहीं मिलते जब उसका विकास हो रहा था। इसका कारण यह माना जाता है कि बहुत समय तक ये ग्रंथ मौलिक रूप में ही प्रचलित रहे थे। बाद में जाकर उनका संग्रह किया गया। इसी से भाषा में नवीनता आ गई। परन्तु यह मत संदिग्ध प्रतीत होता है। फिर भी किसी भी चारण-काव्य की हस्तलिखित प्रति 1500 ई० से पूर्व की नहीं मिली है।

दक्खिनी हिंदी, मैथिली

दक्खिनी हिंदी भाषा का आरम्भ दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक के दक्षिण-आक्रमण के बाद हुआ। इसकी आरम्भिक रचनाएँ सूफी फकीरों ने लिखीं, जिनकी लिपि फारसी थी। इस भाषा का रूप अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन माना जाता है। इस काल के साहित्य में विद्यापति का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। परन्तु उनकी

'पदावली' की भाषा हिंदी न होकर मैथिली है। उसके किसी भी वर्तमान संग्रह की भाषा 15वीं शताब्दी से पुरानी नहीं मानी जाती। विद्यापति 14वीं शताब्दी में हुए थे। कबीर आदि संत कवियों की भाषा के विषय में भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने मूल रूप में उपलब्ध हैं उनकी सधुक्कड़ी भाषा के अनेक रूप मिलते हैं। कबीर के काव्य में कहीं तो पंजाबी का घोर प्रभाव लक्षित होता है और कहीं पूर्वी हिंदी का। इसका कारण यह है कि कबीर आदि की वाणी जिन-जिन प्रदेशों में संगृहित कर लिपिबद्ध की गई उसकी भाषा पर वहीं की बोली का गहरा रंग चढ़ गया।

खुसरो की भाषा

इस काल में केवल अमीर खुसरो ही एक ऐसा कवि हुआ है जिसकी भाषा में साहित्यिक-हिंदी के दर्शन होते हैं। सन् 1350 के लगभग खुसरो ने हिंदी-भाषा की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि–

हिंदी में मिलावट नहीं खपती और उसका व्याकरण नियमबद्ध है।

–(बड़थ्वाल : बोली से साहित्यिक भाषा)

डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा खुसरो की भाषा को भी प्रामाणिक नहीं मानते। इनकी हिंदी की कविता के नमूने का आधार एकमात्र जनश्रुति है। ''आधुनिक काल में लेखबद्ध किये जाने के कारण, खुसरो की हिंदी – आधुनिक खड़ीबोली हो गई है।'' परन्तु डॉ० बड़थ्वाल खुसरो की भाषा को प्राचीन मानते हैं। जैसे–

खुसरो के नाम से आज जो कविता है उसमें चाहे कितना ही परिवर्तन क्यों न हो गया हो, निश्चय ही वह मूल रूप में वही भाषा थी, जिसे हम आज हिंदी कहते हैं।

जैसे–

श्याम वरन की एक है नारी। माथे ऊपर लागे प्यारी।।
या का अरथ जो कोई खोले। कुत्ते की वह बोली बोले।।

हिंदी के प्राचीन रूप की विवेचना करते हुए डॉक्टर बड़थ्वाल आगे कहते हैं –

प्रारम्भ में मध्य-देश में हिंदी का एक सर्वग्राह्य रूप रहा होगा, जो विकसित होकर ब्रज, अवधी और खड़ीबोली से अलग-अलग रूपों में मिलता है ।

उनका मत है कि गोरख, जलंधर, चौरंगी, कणेरी आदि योगियों की वाणी से उस भाषा का कुछ अनुमान लगाया जा सकता हैं नामदेव, मीरा, रैदास आदि मध्यदेशीय और बाहरी साधु-संतों में भी भाषा का प्रायः यही स्वरूप दिखाई देता है ।

अरबी-फारसी का प्रभाव

हिंदी भाषा का प्राचीन काल मुसलमानी प्रभुत्व का काल है । अतः यह स्वाभाविक है कि हिंदी में उनकी भाषाओं का आदान-प्रदान अवश्य हुआ होगा । चन्द आदि में उनके उदाहरण भी मिल जाते हैं । चन्द की कविता में मशाल, शेख, सुलतान, याकूब आदि अरबी के; शक्कर, कमाल, रूख, शाह आदि फारसी के ; तथा उजवक आदि तुर्की भाषा के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है । चंद की तीसरी भाषा सरल है । यह ब्रजभाषा से बहुत मिलती-जुलती है । अनुमान है कि कालान्तर में वही स्वच्छ और सरल होकर ब्रजभाषा बनी होगी । इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी अपने विकास के आदिकाल में चारों ओर से शक्ति ग्रहण करती हुई विकसित होती जा रही थी । उसने संस्कृत के समान अपने को नियमबद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया था । अन्य भाषाओं के साथ आदान-प्रदान करने वाली भाषा वही शक्तिशाली होती है । वह कभी मरती या स्थिर नहीं होती । हिंदी का वह गुण आज भी अक्षुण्ण है । इस काल के प्रसिद्ध कवियों में नरपति नाल्ह, चन्द, जगनिक, गोरखनाथ, अमीर खुसरो, विद्यापति तथा कबीर विशेष प्रसिद्ध है । डॉ० हरदेव बाहरी लिखते हैं–

1000 ई० के आस-पास मुख्य भारतीय आर्य भाषाओं का उदय माना जाता है । यों तो 14वीं शताब्दी तक निरंतर अपभ्रंश साहित्य की प्रधानता थी । फिर भी साहित्यिक भाषा में हिंदी बोलियों के नमूने अवश्य मिलते हैं और कुछ पंक्तियाँ तो जैसे सामान्य हिंदी की हैं ।

–हिंदी उद्‌भव, विकास और रूप

मध्य-काल (1500 ई० से 1800 ई० तक)

मध्यकाल में हिंदी के तीन रूपों ब्रज, अवधी और खड़ीबोली में से ब्रज और अवधी ही पनपीं। खड़ीबोली में नाममात्र का साहित्य रचा गया। यह एक आश्चर्य का विषय है कि मुसलमानी शासन में एक ऐसी बोली जिसे मुसलमानों ने अपना रखा था, साहित्य में न पनप सकी और ब्रज और अवधी पनप गईं जो जनता की बोलियाँ थीं। इसके कारण राजनैतिक और सामाजिक दोनों ही थे।

हिंदी के विकास का कारण

मध्यकाल तक आते-आते उत्तर भारत में तुर्कों का प्रभुत्व समाप्त होकर पहले पठानों का और फिर बाद में मुगलों का साम्राज्य स्थापित होने लगा था। सत्ता परिवर्तन के इस संक्रान्ति-काल में कुछ समय तक राजपूतों का भी प्रभुत्व रहा था। इन राजपूतों ने हिंदी को विशेष प्रोत्साहन दिया। पठानों के राज्य काल में हिंदी को सरकारी संरक्षण मिला था। पठानों के परवर्ती मुगल-शासक भी यह समझते थे कि बिना हिन्दू जनता की सहानुभूति प्राप्त किये, भारत पर शासन करना असम्भव है। मुगलों की विशेषकर अकबर की, उदारता ने राज-दरबार में भी हिंदी साहित्य को पनपने का अवसर प्रदान किया था।

बाद में तो राम के जन्मस्थान की भाषा 'अवधी' और कृष्ण के जन्म-स्थान की भाषा 'ब्रज' ने धार्मिक आन्दोलन का सहारा पाकर अपना साहित्यिक विकास किया। इस प्रकार धर्म की सहायता पाकर ये भाषाएँ आगे बढ़ चलीं। खड़ीबोली को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका इसलिए उसका विकास रुक गया। डॉ० बड़थ्वाल ने इस पर कुछ प्रकाश डाला। उनका अनुमान है –

आरम्भ में हिंदी का मध्य प्रदेश भर में एक सर्वग्राह्य रूप प्रचलित रहा होगा—जिसमें खड़ी, ब्रज आदि के रूप छिपे रहे होंगे ।

बिहारी, देव, मतिराम, केशव, चिन्तामणि, घनानन्द आदि ने इसका खूब अलंकार युक्त श्रृंगार किया । भूषण ने उसमें वीर रस की पुट दी । 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' आदि के रूप में ब्रजभाषा गद्य के भी दर्शन हुए, परन्तु उसका पर्याप्त विकास न हो सका । यह भाषा यहां तक सर्वप्रिय हुई कि ''बंगाल में' ब्रजबूलि' नाम से उसका एक अलग रूप चल पड़ा जो कृत्रिम होने पर भी उसका महत्व बतलाता है ।''सुर के समय तक ब्रज भाषा काव्य भाषा का रूप धारण कर चुकी थी । सूरदासकृत 'सूरसागर' ब्रज भाषा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है ।

अन्त में तुलसी ने उसे प्रौढ़ता प्रदान कर साहित्यिक आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया । सूफी प्रेमाख्यानक कवियों की अवधी, बोलचाल की अवधि थी । तुलसी ने उसे संस्कृत के योग से परिमार्जित और प्रांजल बनाकर साहित्यिक भाषा का रूप और गौरव प्रदान किया । अवधी में अधिकतर प्रबन्ध काव्य ही अच्छे लिखे गये । जायसी का 'पद्मावत', कुतवन की 'मृगावती', शेखनवी का 'ज्ञानदीप' नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' आदि सूफी कवियों द्वारा रचित प्रबन्ध-काव्य हैं । अवधी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ तुलसीदास का 'रामचरितमानस' माना जाता है । तुलसी यद्यपि मूलरूप में अवधी के कवि थे, परन्तु वे भी ब्रजभाषा के प्रभाव से न बच सके । 'विनयपत्रिका', 'गीतावली', 'कवितावली' आदि में उन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया ।

खड़ीबोली का सबसे स्वस्थ और शुद्ध रूप अमीर खुसरो में मिलता है । खुसरो का काल 1255-1315 ई० है । खुसरो के उपरान्त कबीर आदि के काव्य में भी खड़ीबोली के हल्के से दर्शन होते हैं । आगे चलकर जब ब्रज और अवधी साहित्यिक भाषाएँ बन गईं, खड़ीबोली काव्य लुप्त सा हो चला । अकबर के समय इसमें गंग भाट ने 'चन्द

छन्द बरनन की महिमा' नामक एक गद्य ग्रंथ लिखा है । प्राचीन काल में खड़ीबोली के तीन नाम प्रचलित थे– हिंदी, हिन्दवी और दक्खिनी । डॉ० ग्रियर्सन के विचारानुसार 1800 ई० के लगभग लल्लूलाल ने अपने 'प्रेमसागर' में इसका प्रयोग किया था । सूफी संतों के विषय में डॉ० अब्दुल हक ने लिखा है –

इन बुजुर्गों के घरों में हिंदी बोल-चाल का रिवाज था और चूंकि यह उनके मुफीद मतलब था इसलिए वह अपनी तालीम व तकलीम में भी इसी से काम लेते थे ।

ग्रियर्सन ने स्पष्ट लिखा है–

Such a language did not exist in India before.... when therefore, Lallujilal wrote his Premsagar in Hindi, he was inventing an altogether new language.

आगे चलकर डॉ० ग्रियर्सन फिर कहते हैं–

इसका आरम्भ हाल में हुआ है और इसका व्यवहार गत शताब्दी के आरम्भ से अंग्रेजी प्रभाव के कारण होने लगा है ..... लल्लूजीलाल ने डा० गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से सुप्रसिद्ध 'प्रेमसागर' लिखकर ये परिवर्तन किये थे । जहाँ तक गद्य भाग का संबंध है वहाँ तक यह ग्रंथ ऐसी उर्दू भाषा में लिखा गया था जिसमें उन स्थानों पर भारतीय आर्य शब्द रख दिये गये थे जिन स्थानों पर उर्दू लिखने वाले लोग फारसी शब्दों का व्यवहार करते थे ।

शेरशाह सूरी ने अपने शासन-काल में दो भाषाओं को स्वीकृति प्रदान कर रखी थी–हिंदी और फारसी । उनकी हिंदी खड़ीबोली हिंदी थी । परन्तु अकबर के शासन काल में केवल फारसी ही राज भाषा रही । अतः राज्य के सारे पद फारसी दॉ लोगों के हाथ में थे ।

आधुनिक काल (1800 ई० से अब तक)

आधुनिक काल में खड़ीबोली की इतनी उन्नति का प्रधान कारण उसका गद्य रहा। क्योंकि खड़ीबोली एक विशाल प्रदेश की सम्पर्क भाषा पहले से ही थी इसलिए उसके गद्य को तीव्र गति से विकसित होने में अधिक समय नहीं लगा। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह मानी जाती है कि साहित्य जन-साधारण की वस्तु बन गया। उसका केन्द्र राजसभा से हटकर शिक्षित जन-समुदाय में आ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि रूढ़िगत काव्यभाषा ब्रजभाषा को हटा कर उसके स्थान पर खड़ीबोली की स्थापना की गई और दूसरी तरफ खड़ीबोली गद्य साहित्य की मूलाधार तो थी ही।

उत्तर भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय और सर्वप्रचलित लोक-भाषा खड़ीबोली थी। सुदूर बंगाल तक उसका प्रचार था। लल्लूजीलाल ने कलकत्ता में ही 'प्रेमसागर' की रचना की थी और लल्लूजीलाल स्वयं गुजराती थे। यह खड़ीबोली की व्यापकता का अकाट्य प्रमाण है। बाद में साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु के प्रभाव से और धार्मिक क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रभाव से खड़ीबोली गद्य का खूब प्रचार बढ़ा।

खड़ीबोली का साहित्य बहुत तेजी से पनपा है। अवधी और ब्रज से उसे बड़ी सहायता मिली है क्योंकि थोड़े से रूप भेद से इन तीनों की शब्द-सम्पत्ति और साहित्यिक परम्परा एक ही है। संस्कृत से भी उसने बहुत कुछ लिया है। अरबी, फारसी, अंग्रेज़ी आदि शब्दों से भी उसे परहेज नहीं है। इसका सब कुछ होते हुए भी उसमें वैज्ञानिक और औद्योगिक शब्दावली का अभाव खटकता रहा है। परन्तु अब इस क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो रही है। भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्धित नये-नये शब्दकोश बन रहे हैं।

अब खड़ी बोली के तीन भाग बन गये हैं– हिंदी, हिन्दुस्तानी और उर्दू। खड़ी-बोली के जिस रूप में संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्द अधिकता से प्रयुक्त होते हैं उसे उच्च हिंदी के नाम से पुकारा जाता हैं आज हिंदी भाषा का अधिकतर साहित्यसृजन इसमें ही हो रहा है और इसे ही राष्ट्रभाषा को गौरवपूर्ण स्थान मिला है। हिन्दुस्तानी कोई भाषा नहीं है न इसका कोई व्याकरण है और न ही साहित्य। उर्दू भी कोई नई भाषा नहीं है। खड़ीबोली में फारसी और अरबी के शब्दों का बाहुल्य जिस भाषा में हुआ उसे उर्दू भाषा के नाम से पुकारा जाने लगा।

2. राष्ट्रभाषा हिंदी

देश का बच्चा -बच्चा होगा हिंदी भाषा पर बलिदान ।
अब हिंदी की रक्षा करने निकले मुनिवर संत महान्

–प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु

एक स्वतंत्र राष्ट्र की पहचान है – एक विधान, एक निशान (झण्डा), एक जबान (भाषा) । यदि प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार किसी राष्ट्र की यह स्थिति है तभी उसे राष्ट्र के नाम से पुकारना चाहिये । राष्ट्र के लिये एक और तत्व भी अनिवार्य है वह है शिक्षा । राष्ट्र की आत्मा शिक्षा होती है और भाषा उसकी वाणी होती है । अपनी संस्कृति एवं स्वस्थ परम्पराओं के अनुसार यदि राष्ट्रीय शिक्षा नहीं है तो राष्ट्र मृतवत् है । यदि अपनी राष्ट्रीय भाषा न हो तो वह राष्ट्र गूंगा कहलाता है । यों इन दोनों तत्वों के अभाव में कोई भी राष्ट्र घिसटता तो है, परन्तु उन्नति नहीं कर सकता है ।

755 वर्षों के उपरान्त भारत 15-8-1947 ई० को परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ कर स्वतंत्र हुआ । इसके पश्चात् भारतीय संविधान निर्माताओं ने 373 अनुच्छेद के अनुसार 14.9.1949 ई० को हिंदी को भारत की राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया । वस्तुतः हिंदी हमारे देश की घोषित राष्ट्रभाषा है और इस घोषणा में कोई पक्षपात नहीं हुआ है क्योंकि प्रस्तुत भाषा इस महान् पद की अधिकारिणी है । इसके अधोलिखित कारण हैं–

1. हिंदी इसलिए राष्ट्रीय भाषा नहीं बनी कि संविधान ने इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार किया । इसलिए भी नहीं कि इसका सीधा संघर्ष अंग्रेज़ों के साथ था । हिंदी इसलिए भी राजभाषा नहीं बनी थी कि यह अन्य प्रादेशिक भाषाओं की अपेक्षा उन्नत एवं समर्थ थीं परन्तु इसलिए कि इसके पीछे एक सुदीर्घ इतिहास था । महान् परम्परायें थीं, विस्तृत पृष्ठभूमि

थी । मंगल की जवानी, तांत्या का त्याग इस की जड़ों में था । भगतसिंह, सुखदेव, बिस्मिल और चन्द्रशेखर आज़ाद का रक्त इसकी नसों में था । मदन और उधम, शचीन्द्र और कन्हाई की आशायें इसके साथ थीं । लाल, पाल और बाल का यह सहारा थी । गांधी और जवाहर भी इसकी रक्षा के लिये तत्पर थे । सुभाष और रासबिहारी का वही प्राप्तव्य था ।

राजा राममोहन राय का आशीर्वाद इसे प्राप्त हो चुका था, केशवचन्द्र सेन का हाथ इसके सिर पर था और दयानन्द की दया दृष्टि इस पर हुई । इस भाषा में कबीर के भजन भारत के कोने-कोने में गाये जाते हैं । नानक और मीरा की भक्ति इसी भाषा में प्रकट हुई थी । गुरु गोबिन्दसिंह ने 'चण्डीचरित्र' हिंदी में ही लिखा था । मध्यकाल में सारे भारत में जो भक्ति की लहर चली थी वह किस माध्यम से देश में चारों ओर फैली? उत्तर मिलेगा – हिंदी भाषा ।

हिंदी का सम्बन्ध केवल हिन्दुओं से जोड़ना ठीक नहीं । हिन्दू, हिंदी तथा हिन्द शब्द सिंधु, सिंधी तथा सिंध के फारसी रूप हैं । ईरान तथा फारस के निवासी मुसलमान सिंधु नदी के तट प्रदेश को हिन्द तथा वहाँ के निवासियों को हिन्दू कहते थे तथा उनकी भाषा हिंदी कहलाई । भाषा के अर्थ में हिंदी शब्द मुसलमानों की देन है । अतः हिंदी को केवल हिन्दुओं तक सीमित करना उचित नहीं ।

परन्तु यह उस आन्दोलन का परिणाम था जिसका सूत्रपात महर्षि दयानंद ने 1882 ई० में सरकार द्वारा नियुक्त कमीशन के पास हिंदी के पक्ष में हस्ताक्षरयुक्त ज्ञापन भिजवाये थे ।

यहाँ तक कि संसार के लगभग 225 विभिन्न देशों में हिंदी सब भाषाओं से अधिक बोली जाती है । दूसरा स्थान चीनी भाषा, तीसरा अंग्रेज़ी भाषा और चौथा अरबी भाषा का है । यह सब कमाल दूरदर्शन के चैनलों के माध्यम से हुआ है ।

2. इसकी तत्सम शब्दावली है जो अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में भी उसी रूप में उपलब्ध है ।

3. हमारे देश में इस भाषा में बोलने वालों की संख्या लगभग 50% है । क्योंकि मुख्यतः यह भाषा हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड आदि राज्यों में बोली जाती है और यही भाषा इन राज्यों की राजभाषा भी है ।

4. बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों की भाषाओं और हिंदी के शब्द भण्डार में इतनी अधिक समानता है कि वहाँ के निवासी हिंदी भाषा को आसानी से समझ सकते हैं ।

5. भारत के लगभग सभी बड़े-बड़े नगरों और राज्यों में फैले हुए राजस्थानी मारवाड़ी व्यापारी वहाँ लगातार हिंदी का प्रचार-प्रसार करते हैं ।

हम भारतीय हैं । अतः हमारी आत्मा यह स्वीकार नहीं कर सकती कि एक विदेशी भाषा हमारी राष्ट्र भाषा बनी रहे । यहाँ तक कि भारत में अंग्रेजी जानने और बोलने वाले की संख्या लगभग 0.5% है । अतः डॉ० रामबिलास शर्मा के शब्दों में–

अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग देश के भाग्य विधाता नहीं बन सकते । बोलने वालों की संख्या के विचार से हिंदी संसार की तीन सबसे बड़ी भाषाओं में है । केन्द्रीय राज-काज, अन्तर्जातीय आदान-प्रदान के लिए इसका व्यवहार उचित है ।

चौदह सितम्बर के दिवस का ऐतिहासिक महत्व है । इसकी एक संवैधानिक महत्ता है । बहुत लोगों को यह पता नहीं होगा कि यह त्योहार बना कैसे ? तब राजनीतिक भाषाई विवाद का जन्म नहीं हुआ था । तो भी भाषा का प्रश्न जटिल नहीं था । संविधान सभा में इस

विषय पर बहुत ही गहन एवं गंभीर वादविवाद हुआ था। राष्ट्रभाषा के प्रश्न की जटिलता का कारण यह भी है कि हमारे देश में लगभग 1700 भाषायें बोली जाती हैं और इनमें से लगभग 50 भाषायें विदेशी हैं। जिन 14 मुख्य भाषाओं को संवैधानिक उप-भाषा का दर्जा दिया गया है उनमें हिंदी देश के सर्वाधिक लोगों की भाषा है। इसलिये संविधान निर्माताओं ने हिंदी को भारतीय संध की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। 2.5.1947 ई० को संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने वक्तव्य में कुछ कठिनाइयों का उल्लेख किया था जिनके कारण उस समय संविधान सभा को अपना कामकाज अंग्रेज़ी में करना पड़ा था। किन्तु उन्होंने यह इच्छा भी व्यक्त की थी—

संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद का साथ ही साथ हिंदी रूपांतरण भी प्रस्तुत किया जाता रहे और जब संविधान के आत्मसमर्पण का समय आए तो हिंदी में भारतीय संविधान की प्रति को भी आत्मसमर्पण किया जाये ताकि भविष्य में किसी को भी विशेषकर न्यायपालिका को अंग्रेज़ी में लिखे संविधान पर निर्भर न रहना पड़े। आखिर कब तक हम अपने न्यायधीशों से यह अपेक्षा करते रहेंगे कि वे अंग्रेज़ी भाषा में पारंगत हों। मेरी व्यक्तिगत इच्छा यह है कि संविधान की मूल प्रति हमारी अपनी प्रमुख भाषा में हो न कि अंग्रेज़ी में।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी के आग्रह पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों को सभा की सारी कार्यवाही हिंदी में शीघ्र उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया था। 4.11.1949 ई० को संविधान के हिंदी प्रारूप का विषय संविधान सभा के समक्ष पुनः प्रस्तुत हुआ। इस पर सेठ गोविन्ददास एवं पं० बालकृष्ण शर्मा ने यह प्रश्न उठाया—

संविधान के प्रारूप के अनुच्छेद 99 के द्वारा हिंदी को राष्ट्र भाषा का स्तर प्रदान करने के बाद भी क्या सदन के समक्ष संविधान के शेष अनुच्छेद अंग्रेज़ी में ही रखे जाएंगे और यह मूल विधान किस भाषा में भारत में माना जाएगा।

18.5.1949 ई० को गोविन्द दास ने पुनः डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का ध्यान उनकी दिनांक 2.5.1947 ई० की उस घोषणा की ओर आकर्षित किया जिसमें संविधान के राष्ट्रभाषा में होने का वचन दिया गया था। सेठ गोविन्द दास ने इस विषय को इस प्रकार रेखांकित किया–

संविधान का प्रारूप राष्ट्रभाषा में हो और साथ में उसका अंग्रेजी अनुवाद दिया जा सकता है किन्तु मूल और अधिकाधिक संविधान राष्ट्रभाषा में ही हो।

अतः 14.9.1949 ई० को जब हिंदी को भारत की राजभाषा घोषित किया गया तब डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने संतोष एवं प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था–

पहली बार भारत का संविधान बन रहा है। आज हमने उसे भाषा दी है। वह भाषा जिसमें भारतीय संघ का कारोबार चलेगा। हिंदी भाषा को अब समय की परिस्थितियों के अनुसार विकसित होना होगा।

इसके पश्चात् हिंदी को पूरी तरह लागू कर दिया जायेगा और सारा सरकारी कामकाज हिन्दी में ही होगा। इसप्रकार 26.1.1950 ई० को हिंदी को भारत की राज भाषा बना दिया गया था। यह भी कहा गया कि केवल 15 वर्ष तक अंग्रेज़ी भी साथ-साथ चलेगी। इसके बाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरु ने विजयालक्ष्मी पंडित को रूस का राजदूत नियुक्त कर दिया।

उन्होंने वहाँ के राष्ट्रपति को अपना परिचय पत्र अंग्रेज़ी भाषा में दिया तो उसे वापिस करते समय रूसी नेता ने कहा था –

अब तो भारत आज़ाद है। क्या उसकी अपनी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। कृपया अपने देश की भाषा में अपना परिचयपत्र प्रस्तुत करें।

हमें फिर भी लज्जा नहीं आई। यह तर्क दिया गया क्योंकि भारत बहुभाषायी देश है। इसलिये किसी भाषा में काम काज करने से राष्ट्रीय एकता को आघात नहीं लगेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने प्रथम 15 वर्ष अस्थायी रूप से अंग्रेजी में सरकारी काम काज करने का निर्णय लिया–

यहाँ यह समझ लेना जरूरी है कि हिंदी की होड़ केवल अंग्रेजी से है, किसी प्रांतीय भाषा से नहीं। परन्तु राजनीति के तहत हिंदी को प्रांतीय भाषाओं के विरुद्ध खड़ा कर दिया गया है। 15 वर्ष बाद जब हिंदी को 26-1-1965 ई० को पूरी तरह लागू करना था तो उसके ठीक पहले 17-1- 1965 ई० को डी.एम.के. नेता सीएन अन्नादुरै ने तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री को पत्र लिखा था कि उनकी पार्टी 26 जनवरी को 'शोक दिवस' के रूप में मनायेगी, यदि उस दिन हिंदी पूरी तरह लागू कर दी गई।

अतः इसी विरोध के कारण 26-1-1965 ई० को भारत की संसद् ने हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा और अंग्रेज़ी को सह-राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप तमिलनाडु व बंगाल में हिंदी के विरोधी प्रदर्शन व दंगे हुए।

3. राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अंतर

भावों की अभिव्यक्ति के सार्थक ध्वनि-समूह को भाषा की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है । भाषा को लिपि का पर्याय नहीं माना जा सकता हैं भारतवर्ष की प्रधान लिपि होने के कारण देवनागरी को 'राजलिपि' होने का गौरव संविधान ने प्रदान किया है भारत की प्रधान भाषा होने के कारण हिंदी राजभाषा होने की अधिकारिणी बनी । इसे राजभाषा के उच्चासन पर स्थापित किया गया ।

राजभाषा का अर्थ – 'राजभाषा' संज्ञा, स्त्री शब्द का अर्थ है, राज्य की भाषा, राजा या शासक की भाषा । आज इसका अर्थ 'सरकारी भाषा' समझा जाता है अर्थात् सरकारी कामकाज, पत्राचार इत्यादि की दफ्तरी भाषा ।

हिंदी सदियों पूर्व से हमारे देश में राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही हैं राजपूत, मराठा और मुसलमान शासकों तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी आदि के शासनकाल में हिंदी का प्रयोग होता रहा । आज से लगभग 600 ई० पूर्व दक्खिनी भाषा (हिंदी, दक्षिण भारत की जनसाधारण की भाषा के रूप में प्रचलित थी) और लगभग 300 वर्षों तक इसने यहाँ राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित स्थान ग्रहण किया । मुसलमान बादशाहों की विजयों के कारण दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचलन बढ़ा । 16वीं शती के शुरू तक दक्खिनी हिंदी दक्षिण की जनता की भाषा के रूप में अपनायी जा चुकी थी । 18वीं शती में पेशवा, सिंधिया, होल्कर आदि मराठी परिवार हिंदी में अपने राज्य का कार्य करते थे । प्राप्त मराठी अभिलेखों से इसकी पुष्टि होती है राजपूत राज्य में पृथ्वीराज चौहान के दरबार में राजकवि चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराजरासो' की रचना की थी । आज से लगभग 750 वर्ष पूर्व अमीर खुसरो ने 'न आप आए न भेजी बतियाँ' लिख कर सम्पर्क भाषा हिंदी की बुनियाद मजबूत की थी ।

12वीं शताब्दी के बाद भी कार्यालयों में पुरानी हिंदी का प्रयोग आंशिक रूप से होता ही रहा, यद्यपि तुर्कों और अफ़गानों के आगमन के उपरान्त फारसी भाषा राजभाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही थी। मुगल वंश के बादशाहों ने 1526 ई० से 1707 ई० तक राज्य किया। इस काल में सूर, तुलसी, कबीर और रहीम खान हिंदी साहित्य के महान् कवि हुए। मुगलों के शासनकाल में शासन-कार्य का माध्यम हिंदी भी थी।

डॉ० हरदेव बाहरी ने 'राजभाषा' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए लिखा है–

निश्चय ही राजकाज चलाने के लिए किसी-न-किसी भाषा की आवश्यकता पड़ती है। अशोक की राजाज्ञाएँ उस काल की 'पालि' (भाषा) में साम्राज्य के अनेक केन्द्रों से प्राप्त हुई है। इनसे आगे-पीछे संस्कृत का प्रयोग होता रहा। मुसलमान बादशाहों के शासन-काल में चार-पाँच शताब्दी तक शासक कार्य का माध्यम हिंदी थी।

मध्यकाल शासन-व्यवस्था के प्रसिद्ध विशेषज्ञ ब्लाखमैन ने सन् 1871 ई० के 'कलकत्ता रिव्यू' में लिखा था–

मालगुजारी का इकट्ठा करना और जागीरों का प्रबन्ध करना उस समय बिल्कुल हिन्दुओं के ही हाथ में था इसलिए निजी तथा सर्वसाधारण के हिसाब-किताब सब हिंदी में रखे जाते थे।

ऐतिहासिक दस्तावेजों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि अकबर के शासन काल तक समस्त काग़ज़ात हिंदी में रखे जाते थे। अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा लिखित ''चंद छंद बरनन की महिमा'' नामक ग्रंथ में खड़ी बोली के दर्शन होते हैं। औरंगजेब के समय के एक अग्रलिखित फरमान से हिंदी के मिले जुले प्रयोग की बात स्पष्ट होती है।

स्वस्ति श्री संवत् 1825 वर्ष माघ सुदि 7 गुरौ अहोच पातशाहा श्री सुलतान शाहा आलमग्यरी साहिब 'क़ुरननशीन धारमिक सत्यवादी

वाचा अविचल ज्यवन कुल तिलक। सकलरायां शरोमणि महाराज राजेश्वर सब ए हवो पातशाह श्री श्री श्री श्री श्री श्री अवरंगजेब सूख मुद्रा राज्यं करोति तस्यादेशात् श्री गुजरात सी श्री राजनगरे सो ये साहिब नु वाप श्री मह वतषान दी वार्त्ता श्री श्री हाजी भट्टिभद सफि छवि।.... (जोगी, सुनील, राजभाषा हिंदी और उसका स्वरूप (दिल्ली, आधुनिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, सन् 2001 ई०) पृ० 37-38)

आगे चल कर सम्राट् अकबर के गृहमंत्री राजा टोडरमल के आदेश से फारसी भाषा में सरकारी कामकाज शुरू किया। देश में युवाओं ने नौकरियां पाने के लिए फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी सन् 1833 तक शासन कार्य का माध्यम 'फारसी' को ही बनाया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के समय में हिंदी का प्रयोग होता रहा, परन्तु लार्ड मैकाले ने राजकाज की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी को बढ़ावा दिया। अंग्रेज़ों के शासन काल में अंग्रेज़ी के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों में वहां की प्रादेशिक भाषा को राजभाषा के रूप में अपनाया गया। उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश में अंग्रेजी के साथ-साथ उर्दू (जो हिंदी का ही एक रूप है) को कचहरियों के कामकाज की भाषा का दर्जा दिया गया। डॉ० हरदेव बाहरी के अनुसार–

लार्ड मैकाले ने आकर अंग्रेज़ी को प्रतिष्ठित करने की विशाल योजना तैयार की। फारसी को अपदस्थ करके उच्चस्तर पर अंग्रेजी और निम्नस्तर पर देशी भाषाएं प्रयुक्त होने लगीं। हिंदी प्रदेश में, कुछ तो अंग्रेज़ बहादुर की कूटनीति के कारण, उर्दू की प्रतिष्ठा हुई, यद्यपि राजस्थान, मध्यप्रदेश और (काश्मीर को छोड़ कर) उत्तर भारत की समस्त रियासतों में सारा कार्य-व्यवहार हिंदी के माध्यम से ही चलता रहा। जिस तरह फारसी-उर्दू के साथ एक वर्ग विशेष का स्वार्थ जुड़ा है, इसी तरह अंग्रेज़ी से लाभ उठाने वाले मद्रास और बंगाल के बाबू

वर्ग का व्यापक रूप में और अन्य प्रान्तों में थोड़े से 'संभ्रान्त' लोगों का, सीमित रूप में, इसके प्रति मोह बढ़ता गया। (संभवतः आर्थिक अभावजन्य) परिस्थिति और नौकरवृत्ति के कारण इन लोगों का आत्मगौरव, स्वाभिमान और बौद्धिक स्वातन्त्र्य मानो नष्ट हो गया।

सन् 1807 ई० के आसपास सदासुखलाल ने 'सुखसागर', इंशा अल्ला खाँ ने 'रानी केतकी की कहानी', लल्लूजीलाल ने 'प्रेमसागर' व सदल मिश्र ने 'नासिकेतापाख्यान' आदि ग्रंथों को लिख कर हिन्दुस्तानी हिंदी की आधारशिला रखी। 19वीं शताब्दी के मध्य में एक तरफ राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' ने गद्य के अरबी-फारसी रूप को प्रतिष्ठित किया, तो दूसरी तरफ राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत-गर्भित हिंदी को प्रश्रय दे कर हिंदी के संवर्द्धन में अपना अपूर्व योगदान दिया। 19वीं शताब्दी में भारतेन्दु युग के लेखकों में हिंदी भाषा के उत्थान के लिए बड़ी अकुलाहट थी। 20वीं शताब्दी में हिंदी के परिमार्जन, शब्द भंडार में वृद्धि और अभिव्यंजना शक्ति में अपूर्व विकास हुआ और आज विभिन्न विधाओं के माध्यम से हिंदी विकास के पथ पर गतिशील है हिंदीतर प्रान्तों के निवासी समाज-सुधारकों एवं चिन्तकों, जैसे सर्वश्री राजा राममोहन राय, आचार्य केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, सुभाषचन्द्र बोस, काका साहब कालेलकर, विनोबा भावे इत्यादि ने समाज सेवा के कार्य के लिए हिंदी के माध्यम से प्रचार कार्य को महत्व प्रदान किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कदाचित् 'राजभाषा' के पद पर हिंदी को समासीन करने के लिए ही लिखा था–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल।।

प्राचीन प्रांत में कचहरियों में उर्दू के स्थान पर हिंदी के प्रयोग की मांग को लेकर जो सर्वप्रथम आन्दोलन आरम्भ हुआ था उसी का संकेत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के इस वक्तव्य में झलकता है–

सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न ही प्रजा की।

सन् 1901 में पं० मदनमोहन मालवीय ने प्रांत में अदालती भाषा के रूप में हिंदी को सबसे पहले उर्दू के समान स्थान दिलाने में सफलता प्राप्त की। फिर भी मुंशी लोगों ने व्यावहारिक सुविधा के लिए उर्दू को ही अपनाए रखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान में 15 भारतीय भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है जिनमें हिंदी भी एक भाषा है। अधिकांश लोगों द्वारा समझी और बोली जाने के कारण राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा के रूप में हिंदी को संघ सरकार की राजभाषा की गरिमा 26-1-1950 को प्रदान की गई। उल्लेखनीय है कि 14-9-1949 ई० को हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए संविधान सभा में प्रस्ताव पारित किया गया था, जिसकी अध्यक्षता डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने की थी। विभिन्न प्रदेशों में वहाँ की प्रादेशिक भाषाएँ जैसे– असम में असमिया, बंगाल में बंगला आदि प्रचलित हैं, किन्तु मणिपुर में अंग्रेज़ी को राजभाषा के रूप में अपनाया गया है। जम्मू तथा कश्मीर में कश्मीरी राजभाषा है, लेकिन उर्दू को वहाँ सरकारी कामकाज में अधिक प्रयोग किया जाता है।

भारत में हिंदी के सार्वजनिक महत्व पर प्रकाश डालना आवश्यक है। कई हिंदी भाषी राज्यों में यह शिक्षा का माध्यम बनी हुई है। कुछ राज्यों में अनिवार्य और ऐच्छिक विषय के रूप में हिंदी का अध्ययन और अध्यापन किया जाता है। दूरदर्शन, आकाशवाणी, सिनेमा, संघ सरकार के कार्यालयों, हिंदी भाषी राज्यों के कार्यालयों एवं शिक्षा-संस्थाओं में हिंदी को पूरी निष्ठा के साथ सम्मानपूर्वक ग्रहण किया गया है। भारत सरकार की राजभाषा नीति के कार्यक्रम के अंतर्गत पत्र-व्यवहार में हिंदी के प्रयोग के विषय में क्षेत्रवार कार्यक्रम

के अनुपालन से हिंदी का प्रयोग बढ़ा है । इन दिनों सभी नाम पट्ट, द्विभाषी फार्म, कार्यालयी मोहरें, पत्र-शीर्ष, लिफाफों तथा स्टेशनरी की अन्य मदों पर लिखे या मुद्रित लेख हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों में दिए जाते हैं । भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अन्तर्गत राजभाषा विभाग के आदेशों, हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए पुरस्कार, वैयिक्तक वेतन आदि की सुविधाओं से सरकारी कामकाज में हिंदी के टिप्पण/आलेखन परिमाणात्मक दृष्टि से बढ़े हैं ।

सरलता और सुबोधता की विशेषता से युक्त होने के कारण देश की अधिकांश जनता द्वारा प्रयोग करने की विशेषता इसमें विद्यमान है । इसकी लिपि देवनागरी भी अपनी वैज्ञानिकता के कारण प्रसिद्ध है । इसका ध्वनिग्राफ भी वैज्ञानिक है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में व्यक्त किया जा सकता है । ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत सभी उच्चारण ध्वनियों की इसमें व्यवस्था है । सरलता एवं सहज अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिंदी भाषा विश्व की भाषाओं की तुलना में उच्च स्थान की अधिकारिणी है ।

अनेक अवरोधों तथा कठिन परिस्थितियों में भी हिंदी सदा राष्ट्रीय चेतना की जागृति के लिए प्रयत्नशील रही है । निश्चय ही यह राष्ट्रभाषा सतत् स्थायी मूल्यों, आकांक्षाओं एवं संवेदनाओं को वाणी प्रदान करती रही है । एकता, समता, सत्य, प्रेम, अहिंसा, सहिष्णुता एवं अध्यात्म के सन्देश को जनमानस के बीच प्रसाद करने के उत्तरदायित्व का निर्वाह हिंदी में सफलतापूर्वक किया है । एक ओर जहाँ प्राचीन कवियों जैसे–कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम, मीरा आदि की कृतियाँ मानवता का पोषण करती रही हैं वहाँ समन्वय, मैत्री एवं करुणा आदि निरन्तर मूल्यों के बीज बोना भी आधुनिक कवियों का लक्ष्य रहा है । अहिंदी भाषी गुरु नानक देव, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, काका साहेब कालेलकर, विनोबा भावे, सुभाषचन्द्र बोस, नरसिंह मेहता आदि ने अपने विचारों को प्रकट करने का माध्यम

हिंदी बनाया । हिंदी हमारी संस्कृति की धरोहर एवं प्राण है । वस्तुतः यह भाषा हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को जीवित रखे हुए है और उन्हें अपने में आत्मसात किये हुए है ।

हिंदी के माध्यम से विभिन्न प्रदेशों के बीच सांस्कृतिक परंपरा को विकसित करने की दृष्टि से भारतीय भाषाओं में हिंदी एक सेतु एवं कड़ी का कार्य कर रही है । हिंदी भाषा राग-रंजित, विभिन्न आदर्शों एवं आकांक्षाओं से युक्त साहित्य रखती है, जो सुगन्धित पुष्पों की तरह अपने अमृत रस से सभी को अपूर्व आनन्द की अनुभूति कराता हैं हमारी मिली-जुली संस्कृति को विकसित करने में इसने अहम् भूमिका का निर्वाह किया है । हिंदी का ज्ञान राष्ट्रीय एकता का एक प्रतीक कहा जा सकता है । राजभाषा हिंदी आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवहार में सौ प्रतिशत सक्षम है ।

किसी भी भारतीय भाषा से हिंदी का कोई टकराव नहीं हैं ये सभी भाषाएँ परस्पर पूरक हैं । सभी प्रादेशिक भाषाओं के बोलने वाले जनसमुदायों का स्नेह एवं सहयोग प्राप्त करते हुए हिंदी का उन्नति करना अपेक्षित है । मौलिक साहित्य के सृजन के क्षेत्र में प्रत्येक देश की अपनी भाषा का महत्व है । समस्त भारतीय भाषाओं और लिपियों को संबंधित क्षेत्र में बढ़ावा मिले यह सभी भारतीयों की आकांक्षा है, किन्तु समस्त देश को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य हिंदी ही कर सकती है । भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी का अटूट संबंध है । पिछले 70 वर्षों से हिंदी अखिल भारतीय स्तर पर यदि एक ओर अंग्रेज़ी से जूझ रही है, तो दूसरी ओर हिंदी प्रांतों में प्रचलित उर्दू भाषा से उसकी संघर्ष यात्रा जारी है ।

राष्ट्रभाषा – समाज में जिस भाषा का प्रयोग होता है, साहित्य की भाषा उसी का परिष्कृत रूप हैं भाषा का आदर्श रूप यही है, जिसमें विशाल समुदाय अपने विचार प्रकट करता है । इन्हीं से जब भाषा का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत होकर सारे राष्ट्र में व्याप्त

हो जाता है, तो वह भाषा राष्ट्रभाषा कहलाती है ।

राष्ट्रभाषा का सीधा अर्थ है—राष्ट्र की वह भाषा, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र में विचार विनिमय एवं सम्पर्क किया जा सके । जब किसी देश में कोई भाषा अपने क्षेत्र की सीमा को लांघकर अन्य भाषा के क्षेत्रों में प्रवेश करके वहाँ के जनमानस के भाव और विचारों का माध्यम बन जाती है, तब वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्थान प्राप्त करती है । वही भाषा सच्ची राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसकी प्रवृत्ति सारे राष्ट्र की प्रवृत्ति हो । जिस पर समस्त राष्ट्र का प्रेम हो । राष्ट्र के अधिकांश क्षेत्रों में बोली जाने वाली तथा समझी जाने वाली भाषा ही राष्ट्रभाषा कहलाती है । राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने, राष्ट्रीय भावना को जागृत करने तथा राष्ट्रीय गौरव की भावना को संवहन करने की शक्ति होती है । राष्ट्रभाषा में समस्त राष्ट्र के जनजीवन की आशाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं एवं आदर्शों को चित्रित करने की अद्‌भुत शक्ति होती है । एक देश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु उनमें से किसी एक भाषा को ही राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाता है ।

राष्ट्रभाषा राष्ट्र के बहुसंख्यक लोगों के द्वारा समझी और बोली जाने वाली भाषा होती है । हिंदी सदियों से पारस्परिक आदान-प्रदान, संवहन एंव अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में देश को एक सूत्र से जोड़ती आई है । यह वही भाषा जो स्वतंत्रता से पूर्व उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक समस्त देश की संस्कृति को वाणी देती आई है । इस बहुमुखी देश में अनेक जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों की भाँति अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उपलब्धियाँ प्रचलित हैं । इसलिए कभी-कभी ऐसा लगता है कि यहाँ विविधता का वर्चस्व है । वास्तव में, यह विविधता ही इस धरती की शक्ति है और इस विविधता में जो एकता विद्यमान है, यही भारत की असली पहचान है । अनुभूति और भावना के धरातल पर सारा देश कहीं-न-कहीं एकता के तार से

जुड़ा हुआ है। भाषा के स्तर पर भी देश की भावनात्मक एकता का पोषण हुआ है और पारस्परिक तालमेल और समन्वय के द्वारा भारत की सामाजिक शक्ति विकसित हुई। जब हम हिंदी और भारतीय भाषाओं की बात करते हैं तथा इसके प्रचार और प्रसार के बारे में विचार करते हैं तो हमारा ध्यान इस सांस्कृतिक समन्वय और अनेकता में एकता की बात की ओर जाता है, जो एक नई भाषायी संस्कृति की आधारभूमि है। हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के पारस्परिक आदान-प्रदान से हमने अपनी परंपराओं और संस्कृतियों के महत्व को समझने में सहजता मिलती है। यही कारण है कि आज हम हिंदी के प्रचार-प्रसार की बात करते हैं, तो उससे भारतीय भाषाओं के उत्कर्ष की बात भी स्वतः ही सामने आ जाती है।

राष्ट्रभाषा की भूमिका प्रादेशिक भाषाओं के बीच सेतु की तरह होना आवश्यक है। मात्र राजभाषा की तरह नहीं। हिंदी की नियति तो यह होगी कि स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले वह अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद की जड़ें इस महादेश से उखाड़ फेंकने के अविराम स्वातंत्र्य संघर्ष की मुख्यधारा की भाषा थी—असेतू हिमाचल, भारत की समस्त सामाजिक, सांस्कृतिक और स्वातंत्र्य चेतना की केन्द्रीय भाषा होने का श्रेय उसे प्राप्त था, लेकिन 'भारतीय संविधान' में 'राजभाषा' का मुखौटा जड़ दिये जाने के बाद, अब वह स्वयं नैसर्गिक विकास और आलोक से वंचित होकर, सिर्फ दोयम श्रेणी के नागरिकों की भाषा रह गई। तब वह स्वातंत्र्य संघर्ष और भारत की सामाजिक, संस्कृति की एकात्मकता को प्रतिच्छायित करने वाली भाषा थी, अब शासितों, शोषितों और पददलितों की भाषा है।

हिंदी इस महादेश की मिट्टी की भाषा है। हिंदी अपने वास्तविक रूप में आज भी इस देश के अधिसंख्य पददलितों, शोषितों और अवमानितों की मुख्य भाषा है और वस्तुतः यही इसकी वह अमोघ शक्ति है, जिसकी संकल्पना मात्र से प्रभुसत्तावर्ग की रूह

काँपती रही है और उसका यह भय निराधार नहीं है कि जिस दिन हिंदी इस महादेश की केन्द्रीय भाषा बनेगी, वही इस देश के सामान्य जनों की सामाजिक-आर्थिक मुक्ति और औपनिवेशिक प्रभुसत्तावर्ग के उजाड़ का दिन भी होगा। आखिर तो जैसे स्वतंत्रता के संघर्ष को एक समग्र राष्ट्रीय मुख्यधारा का रूप देने के लिए हिंदी को केन्द्रीय भाषा का स्थान देना पड़ा। ठीक उसी तरह, राष्ट्र के सामान्य नागरिकों की सामाजिक-आर्थिक मुक्ति का संघर्ष भी अंततः हिन्दी में ही समाहित हो सकेगा। क्योंकि हिंदी अपनी प्रकृति में ही प्रभुसत्तावर्ग नहीं, बल्कि समाज की भाषा हैं पहले भी यह हिंदी प्रदेशों की भाषा नहीं, बल्कि राष्ट्र की समस्त अंतर्भाषाओं की मुख्यधारा बनने में सक्षम होने से ही स्वातंत्र्य-संघर्ष की केन्द्रीय भाषा बनी थी। सिर्फ इस भाषा में ही यह संचरणशीलता रही है कि बिना राजाश्रय के ही इसने प्रदेशों की सीमाओं को पार किया हैं यह राष्ट्र की अन्य प्रादेशिक भाषाओं के क्षेत्रों तक उनका उल्लंघन करके नहीं, बल्कि इनके शब्दों व सारतत्वों को स्वयं में स्थान देकर उनके बीच पहुँचती रही। इसकी इसी आत्मघाती प्रकृति का छोटा-सा दृष्टान्त यहाँ हम देना चाहेंगे-

आप कोथाय को जाती हैं? चंदर या पत्तर मिल्या कि नहीं? कायरे अक्खा दिवस मारामारी काहे को करता? क्यों रे काय को बूम मारी नाखता है? ऐ मिस्टर, इतना अर्ली मौर्निंग में किधर की जर्नी करने का? जैसे इसी भाँति के असंख्य परिधि में आ गया, वह सब हिंदी है। किसी हिंदीतरभाषी के द्वारा बोली या लिखी गयी नितांत ऊटपटांग हिंदी में भी ज्यादा से ज्यादा आप ह्रस्व, दीर्घ, लिंग, क्रियापद इत्यादि की त्रुटियों की बात ही कर सकते हैं। यह फतवा नहीं दे सकते कि यह हिंदी नहीं है, क्योंकि हिंदी जब निहायत ऊट-पटांग है, तब भी हिंदी है और जब अज्ञेय ब्रह्माण्ड विवेचन की भाषा है तब भी हिंदी है। भूमि का विस्तार ही उसे राष्ट्ररूप देता है।

भारत की समस्त अन्य भाषाओं के पृथक्-पृथक् रूपों का जो आत्मिक समन्वय हिंदी भाषा में दिख जायेगा वह सचमुच अद्‌भुत और इस बात का अचूक साक्ष्य है कि भूमि का भाषा से क्या रिश्ता है और कि संवेदना की विशदता ही कैसे 'क्षेत्र' के विस्तार को भी निर्दिष्ट करती है ।

हिंदी राष्ट्र की केन्द्रीय भाषा है । आज भी कोई राष्ट्रव्यापी आंदोलन सिर्फ हिंदी में ही संभव है, क्योंकि हिंदी में जब भी चाहे, सभी भारतीय बोल सकते हैं । हिंदी ही एक मात्र भाषा है जिसका तंतुविज्ञान पूरे राष्ट्र तक व्याप्त है, इसलिए जब भी पूरा राष्ट्र एक साथ बोलेगा सभी प्रदेशों के सामान्य जन एक दूसरे से बोलेंगे, वह भाषा सिर्फ हिंदी भाषा होगी । इसलिए नहीं कि हिंदी कोई विशिष्ट नस्ल की भाषा है, बल्कि इसलिए कि इस तिलोत्तमा की रचना में इस महादेश के एक-एक कोने का योगदान है । समस्त भारतीय समाज में से बूँद-बूँद निसृत होकर ही इस भाषा में एकत्र हुआ है । यह अपने निर्मिती में ही पूरे भारतवर्ष की भाषा है ।

प्रभुसत्ता वर्ग के निहित स्वार्थों की जगह, बृहत्तर जन समाज की अस्मिता तथा आकांक्षाओं की भाषा रहना ही हिंदी की शक्ति है और उसकी इस नैतिक-नैसर्गिक शक्ति का दबाव ही प्रभुसत्ता वर्ग को आक्रान्त किए रहता है कि इस महादेश में कैसे ब्रिटिश आकाओं की औपनिवेशिक देन अंग्रेज़ी की समस्त भारतीय भाषाओं पर सवारी गांठने की संप्रभुता को हावी रखा जाए । इस देश के नागरिकों का यह भयादोहन है कि भविष्य की उज्ज्वलता सिर्फ अंग्रेज़ी भाषा की चमकार में है, इसी नीतिग्रस्तता की प्रतिक्रिया है । जबकि इतना प्रत्येक विचारवान व्यक्ति को साफ-साफ दिख जाना चाहिए कि अंग्रेज़ी भाषा का इस महादेश में कोई भविष्य नहीं, क्योंकि यह पीठ पर लादी गई भाषा है, चेतना में समरस हुई भाषा नहीं ।

जिस तरह इस महादेश की सामाजिक, आर्थिक मुक्ति का संघर्ष चढ़ा, उसी दिन अंग्रेज़ी का राजभाषा के रूप में ताना गया पूरा वितान चरमरा जायेगा, क्योंकि यह इस महादेश के जनसामान्य के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक शोषण की भित्तियों पर आकाशबेल की तरह स्थापित भाषा है । राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता के साथ ही शासन की भाषा के तौर पर इसका बोरिया बिस्तर भी अपने ब्रिटिश आकाओं की बगल में ही पहुँच जायेगा ।

भाषा के लिए भाषा कोई नहीं बरतता, प्रसंग में बरतता है । हमारा प्रभुसत्ता वर्ग अंग्रेज़ी को अंग्रेज़ी प्रेम में गले से लगाये नहीं बैठा है । कदाचित् इस देशी, प्रभुसत्ता वर्ग को यदि यह दिख गया होता कि देश की जनता को जड़ और इसकी संस्कृति तथा चेतना को विरुपित किये जाने में हिंदी भाषा, अंग्रेज़ी भाषा से भी कारगर भूमिका निभा सकता है, तो अंग्रेज़ी को 15 अगस्त 1947 को ही लार्ड माउण्डबेटन के 'होलडाल' में लपेट दिया गया होता ।

हिंदी की सामाजिक संचरण शक्ति तथा इसकी संवेदनक्षमता से देशी प्रभुसत्ता वर्ग अपरिचित नहीं था । स्वाधीनता संघर्ष के दौर में वह हिंदी भाषा की क्षमता को देख चुका था और इतना बखूबी जानता था कि इस भाषा की जड़ें इस महादेश की परम्परा और प्रकृति में है, अंग्रेजी की भाँति अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के पूर्वांचलीय औपनिवेशिक द्वीपों की सात समुद्र पार के अन्तः स्रोतों पर निर्भर भाषा नहीं । आज भी ये चाहने पर भी, हिंदी को राष्ट्र की केन्द्रीय भाषा के स्थान पर से उखाड़ फेंकने में सक्षम नहीं है और इतना भय इन्हें बिल्कुल सता रहा है कि यदि अंग्रेज़ी से इस महादेश की चेतना को पूरी तरह जकड़ नहीं दिया गया, तो कल क्या होगा ? क्योंकि इतना ये भली-भाँति जानते हैं कि पाखण्ड के अभिरक्षण में ही सही, हिंदी भाषा का जो भी तथाकथित प्रोत्साहन दिया जा रहा है, वह अपनी जड़ें थामता चला जायेगा,

क्योंकि हिंदी इस महादेश की भूमि की भाषा है, जबकि अंग्रेज़ी केवल एक आकाशबेल ।

राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अन्तर – इन दोनों में मुख्य अन्तर इस प्रकार है–

(1) राष्ट्रभाषा समूचे राष्ट्र के अधिकांश जन-समुदाय द्वारा प्रयुक्त होती है । देश के अधिकतर भागों में आम लोग जिस भाषा में आपसी बातचीत, विचार-विमर्श और लोक-व्यवहार करते हैं, वही राष्ट्रभाषा है । दूसरी ओर राजभाषा का प्रयोग प्रायः राजकीय, प्रशासनिक तथा सरकारी-अर्धसरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों द्वारा होता हैं विविध प्रकार के राजकीय कार्यालय की माध्यम भाषा राजभाषा कहलाती है ।

(2) राष्ट्रभाषा का शब्द भंडार देश की विविध बोलियों, उपभाषाओं आदि से समृद्ध होता है । उसमें लोक-प्रयोग के अनुसार नयी शब्दावली जुड़ती चली जाती है, जबकि राजभाषा का शब्द भंडार एक सुनिश्चित साँचे में ढला होता है और प्रयोजन विशेष के लिए निर्धारित प्रयुक्तियों तक ही सीमित होता है ।

(3) राष्ट्रभाषा जनता की भाषा है । राजभाषा प्रशासन वर्ग की भाषा है ।

(4) राष्ट्रभाषा का प्रयोग अनौपचारिक रूप से उन्मुक्त और स्वच्छन्द शैली में होता है । राजभाषा औपचारिक की मर्यादा- सीमाओं में बंधी रहती है । उसमें मानव-सुलभ सहजात, उन्मुक्तता या स्वछन्द कल्पना के लिए विशेष स्थान नहीं होता है । निर्धारित और मानक रूप में मान्य भाषा प्रयोग की नियमावली का अनुसरण राजभाषा में आवश्यक है ।

(5) राष्ट्रभाषा में राष्ट्र की आत्मा बोलती है । समूचे देश की जनता की सोच संस्कृति, विश्वास, धर्म और समाज संबंधी धारणाएं जीवन के विविधतापूर्ण व्यावहारिक पहलू लौकिक आध्यात्मिक

प्रवृत्तियाँ, निजी और सामूहिक सुख-दुःख के भाव, लोकनीति संबंधी विविध विचार और दृष्टिकोण राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही साकार होते हैं ।

(6) राष्ट्रभाषा राष्ट्र के समस्त सार्वजनिक स्थानों, तीर्थों, सांस्कृतिक केन्द्रों, सभास्थलों, गली-मुहल्लों, हाट-बाज़ारों, मेलों-उत्सवों में प्रयुक्त होती है, जबकि राजभाषा का प्रयोग क्षेत्र कार्यालयों की चारदीवारी तक ही सीमित है ।

निष्कर्ष – अतः राष्ट्रभाषा तो एक विशाल उद्यान है, जबकि राजभाषा उसी विशाल उद्यान से चुने हुए एक विशेष प्रकार के फूलों का गुलदस्ता हैं दोनों का अपना-अपना महत्व और वैशिष्ट्य असंदिग्ध है । राजभाषा हिंदी में वर्तमान और भविष्य पर डॉ० हरदेव बाहरी की इस निष्कर्षपरक टिप्पणी से सहमत होते हुए कहा जा सकता है–

> **संविधान ने जिसको रानी बनाना चाहा था, उसे एक अधिनियम ने अंग्रेज़ी की सहचरी बनाया और इस समय सरकार ने उसको इसी विदेशी भाषा की चेरी बना रखा है । जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था में जनता की भाषा ही राजभाषा होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु हमें अंग्रेजी को हटाना होगा । इसके रहते हिंदी ही नहीं, हमारी कोई भी प्रादेशिक भाषा विकास की ओर नहीं जा सकती ।**

4. अंग्रेज़ी भक्तों का घातक रूप

अंग्रेज़ भारतीयों में परस्पर फूट डाल कर यहाँ 190 वर्ष तक शासन करता रहा था। इसलिए भारत का जन-मानस अंग्रेज़ से घृणा करता था। जब यहाँ का जन-मानस संगठित हो सामूहिक विद्रोह करने पर उतर आया तो अंग्रेज़ों को यहाँ से भाग जाना पड़ा। आज भारत के अंग्रेज़ी-भक्त अंग्रेज की उसी कूटनीति 'फूट डालो और शासन करो' को अपना कर भारतीय भाषाओं में पारस्परिक फूट उत्पन्न कर यहाँ सदा के लिए अंग्रेज़ी का प्रभुत्व कायम रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्वतंत्र भारत की राजभाषा 'हिंदी' स्वीकार की गई थी।

देश के संविधान द्वारा हिंदी को विकसित होने के लिए 15 वर्ष का समय दिया गया था। इन 15 वर्षों में न तो केन्द्रीय सरकार ने हिंदी के विकास का कोई प्रयत्न किया और न ही हिंदी-भाषी राज्यों की सरकारों ने। किसी भाषा का विकास उसका व्यवहार करने से ही होता है। जब हमारी अंग्रेज़ी भक्त सरकारों ने हिंदी का व्यवहार ही नहीं किया तो वह उनकी नजर में विकसित कैसे हो सकती थी? अतः सरकार की मान्यतानुसार हिंदी अविकसित ही रही। हमारे अंग्रेज़ी-भक्त शासक यह जानते थे कि 15 वर्ष की यह अवधि समाप्त हो जाने पर हिंदी को केन्द्रीय सरकार की भाषा बनाना पड़ेगा और ऐसा हो जाने पर उनकी रोजी-रोटी मारी जायेगी उनका महत्व एवं प्रभुत्व समाप्त हो जायेगा, क्योंकि वे हिंदी नहीं जानते अथवा जानते हुए भी हिंदी का प्रयोग करना गंवारपन समझते थे। इसलिए उन्होंने देश में हिंदी विरोधी वातावरण बनाना आरम्भ कर दिया था।

उन्होंने प्रचार किया कि हिंदी अविकसित भाषा है, इसलिए इसके माध्यम से न तो सरकारी कामकाज चलाया जा सकता है और न इसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाना सम्भव है। साथ ही उन्होंने कहा कि हिंदी अहिंदी-भाषियों का शोषण करेगी। भारत की अन्य भाषाएं उन्नति न कर सकेगी। इसलिए इन सब की रक्षा के लिए यहाँ अंग्रेज़ी

का रहना अत्यावश्यक है। अंग्रेज़ी-भक्तों के इस जहरीले प्रचार ने आखिर अपना रंग दिखाना आरम्भ कर दिया। भारत के उन राज्यों में उग्र हिंदी विरोधी भावना फैलने लगी जो पिछले कई वर्ष से प्रेमपूर्वक हिंदी का अध्ययन करते आ रहे थे। इस विरोध का उग्रतम रूप मद्रास राज्य में दिखाई पड़ा। बंगाल में भी इस विरोध ने जोर पकड़ा। मद्रास में हिंदी विरोधी दंगे हुए। सरकारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। हिंदी की प्रच्छन्न दुश्मन केन्द्रीय सरकार को हिंदी को सरकारी भाषा न बनाने का बहाना मिल गया। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने अहिंदी-भाषियों को आश्वासन दे दिया कि जब तक एक भी अहिंदी-भाषी राज्य हिंदी को केन्द्रीय सरकार की राज भाषा नहीं बनाना चाहेगा, तब तक अंग्रेज़ी ही केन्द्रीय सरकारी भाषा बनी रहेगी। अंग्रेज़ी भक्तों की इच्छा पूरी हो गई। मद्रास ने हिंदी को स्वीकार करने से इंकार कर दिया और केन्द्र ने सन् 1967 में 'राजभाषा-संशोधन विधेयक' पारित कर अंग्रेज़ी भक्तों को प्रसन्न और सन्तुष्ट कर दिया।

इधर भारतीय भाषाओं का पारस्परिक द्वन्द्व आरम्भ हो गया। चेनई राज्य की द्रमुक सरकार ने हिंदी विरोधी प्रचार खूब जोर-शोर के साथ आरम्भ कर दिया। उसके प्रचारक पड़ोसी राज्यों—आंध्र, केरल, कर्नाटक में हिंदी विरोधी आंदोलन का प्रचार करने लगे। इस प्रकार इन लोगों ने समस्त दक्षिण भारत में हिंदी-विरोधी आग सुलगा दी। तमिल भाषियों ने तमिल को भारत की सम्पर्क-भाषा बनाने की माँग की और इस मांग को स्वीकार न होने पर केन्द्र से अलग होने की धमकी दी। मलयालम, कन्नड़, तेलुगु भाषियों ने तमिल का विरोध किया। दक्षिण को भाषाओं में पारस्परिक विग्रह का श्रीगणेश हो गया। बंगाल इस संबंध में सचेत और सावधान बना रहा। वह चुपचाप हिंदी का विरोध करने लगा। इस प्रकार इस भाषा समस्या ने सारे भारत में अराजकता की सी स्थिति उत्पन्न कर दी। अंग्रेज़ी भक्त यही चाहते थे। भारतीय भाषाएँ परस्पर लड़ती रहेंगी और अंग्रेज़ी उन पर शासन करती रहेगी।

इसलिये भारत की भाषा-समस्या को हल करने का एकमात्र उपाय यही है कि यहाँ से अंग्रेज़ी का प्रभुत्व समाप्त कर दिया जाये। यह हम भाइयों का आपस का झगड़ा है। हम इस झगड़े में विदेशी अंग्रेज़ी का प्रभुत्व स्वीकार नहीं कर सकते। अंग्रेज़ी बन्दर बांट की नीति अपना रही है, इसलिए यह सबके लिए घातक है। इसे भारत से हटाना ही होगा, तभी यहाँ की भाषा समस्या सुलझ सकेगी। ऐसा हो जाने पर सारे भारतीय आपस में मिलकर किसी भी एक भारतीय भाषा को सम्पर्क भाषा बना लेंगे।

जब से हिंदी को भारत की सम्पर्क-भाषा या राष्ट्रभाषा बनाने की माँग ने जोर पकड़ा है, अनेक अहिंदी-भाषी हिंदी को गालियाँ देते रहते हैं। हम हिंदी वाले हैं, इसलिए हमें बुरा लगता है। देश हिंदी को सम्पर्क-भाषा स्वीकार करे या न करे यह उसकी मर्जी पर निर्भर है। वह किसी भी भारतीय भाषा को स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है। हम हिंदी वाले किसी भी भारतीय भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने को तैयार हैं, परन्तु उसी भाषा को जिसे राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता अपना समर्थन प्रदान करे। समस्त हिंदी भाषी बहुमत के निर्णय को स्वीकार कर लेंगे। हमारा विरोध केवल अंग्रेज़ी के प्रभुत्व से है। यदि हम अपने राज्य से अंग्रेज़ी को हटाना चाहते हैं, केन्द्र से हिंदी में पत्र-व्यवहार करना चाहते हैं, तो कुछ अहिंदी भाषियों को बुरा क्यों लगता है?

हिंदी-भाषी राज्यों में अंग्रेज़ी-विरोधी आंदोलन चला था, तमिल, बंगला या किसी अन्य भारतीय भाषा के विरोध में तो नहीं चला था। परन्तु यह समझ में नहीं आया कि उसी समय में चेनई में हिंदी-विरोधी आन्दोलन ने उग्र रूप क्यों धारण कर लिया? यदि तमिल भाषी तमिल का समर्थन करते हुए हिंदी का विरोध करते, तो हमें उनसे कोई शिकायत नहीं रहती। परन्तु उन्होंने तो अंग्रेज़ी का समर्थन करते हुए

हिंदी का विरोध किया था । तमिलनाडु में तो अभी हिंदी को अनिवार्य नहीं बनाया गया है । वहाँ जो लोग हिंदी सीख रहे हैं, स्वेच्छा ही सीख रहे हैं । यदि तमिल भाषी हिंदी प्रदेश में तमिल का प्रचार करना आरम्भ कर दें तो यहाँ उनका रंचमात्र भी विरोध नहीं होगा । परन्तु हम इसे सहन नहीं कर सकते कि वे अप्रत्यक्ष रूप से हमारे ऊपर अंग्रेज़ी थोपने का प्रयत्न करें । हम उनके इस प्रयत्न का अन्त तक विरोध करेंगे ।

अपनी भाषा से प्रत्येक को मोह होता हैं यदि कोई हमारी भाषा का अपमान करता है, तो मन को बड़ी गहरी ठेस लगती है । अनेक अहिंदी-भाषी हिंदी पर निरन्तर प्रहार करते रहते हैं, हिंदी को असमृद्ध, गंवारू, बाजारू भाषा कहते हैं । हम हिंदी वालों ने तो कभी किसी भारतीय भाषा के लिए ऐसे अपशब्दों का प्रयोग नहीं किया है । हमने भारत की प्रत्येक भाषा के श्रेष्ठ लेखकों का सम्मान किया है, उन्हें पुरस्कार दिये हैं । परन्तु हम जानते हैं कि हिंदी के संबंध में अपशब्द कहने वाले अहिंदी-भाषी लोग हिंदी से अनभिज्ञ और विवेकहीन हैं । हिंदी-भाषा के विकास और समृद्धि में अहिंदी भाषियों का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

आज हिंदी सारे भारत में प्रचलित है । इसलिए युग सत्य यह है कि हिंदी आज सारे भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य कर रही है । केन्द्र या अन्य कोई राज्य भले ही इस तथ्य को स्वीकार करे अथवा न करे, परन्तु वास्तविकता की अवहेलना करना सम्भव नहीं है ।

5. आखिर हिंदी ही क्यों राष्ट्रभाषा बने?

हम हिंदी वाले हैं इसलिए अपने मुंह से अपनी भाषा की प्रशंसा करना अच्छा नहीं लगता। परन्तु फिर भी जो वस्तुस्थिति है, उसे भी नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। 'हिंदी' भारत की घोषित राष्ट्रभाषा है और इस घोषणा में कोई पक्षपात नहीं हुआ है। हिंदी सचमुच इस पद की अधिकारिणी है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. इसकी तत्सम शब्दावली है जो अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में भी उसी रूप में पाई जाती है।

2. भारत में इसके बोलने वाले 50 प्रतिशत से भी अधिक पाये जाते हैं।

3. बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों की भाषाओं और हिंदी के शब्द भंडार में इतनी अधिक समानता है कि वहाँ वाले हिंदी को आसानी से समझ लेते हैं।

4. भारत के लगभग सभी बड़े नगरों और राज्यों में फैले हुए राजस्थानी मारवाड़ी व्यापारी वहाँ लगातार हिंदी का प्रचार करते रहे हैं।

5. हिंदी भाषी प्रदेशों के मजदूर बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में बहुत अधिक संख्या में बसे हुए हैं।

अकेले बम्बई में उत्तर प्रदेश के लगभग 12 लाख निवासी रहते हैं। इसी कारण बम्बई की बम्बइया हिंदी वहाँ की जनता की एक सामान्य सम्पर्क भाषा बन गई है। यही स्थिति कलकत्ता में भी है। इन नगरों में दो भिन्न भाषा-भाषी राज्यों वाले व्यक्ति परस्पर हिंदी के माध्यम से ही बात कर काम चलाते हैं।

प्राचीन परम्परा

यह तो हिंदी की वर्तमान स्थिति है। इस स्थिति में हिंदी न्यूनाधिक रूप में सारे भारत में फैली हुई है। परन्तु इतिहास इस बात

का साक्षी है कि मुगल काल एवं उसके परवर्ती काल में भी हिंदी भारत में अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की एकमात्र भाषा थी। वही स्थिति आज भी है। हिंदी की इस विशाल लम्बी परम्परा का रहस्य यह है कि हिंदी की प्राणशक्ति अक्षय रही है। इसकी जड़ें जनता में गहरी पैठी रही हैं। इसका साहित्य भारत का जातीय साहित्य रहा है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि का साहित्य इसका प्रमाण है। अंग्रेज़ी ने हमारे मन में यह भ्रान्त धारणा बैठा दी थी कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य का उत्थान मूलतः अंग्रेजी की प्रेरणा से हुआ है। यह बात न तो हिंदी के विषय में सत्य है और न अन्य किसी भी भारतीय भाषा के संबंध में। आधुनिक भारतीय साहित्य के मूल रचनात्मक तत्व हमारे अपने जीवन से उत्पन्न हुए हैं और विशुद्ध भारतीय हैं।

आधा फीसदी अंग्रेजीदां

हम भारतीय हैं, इसलिए हमारी गैरत यह स्वीकार नहीं कर सकती कि एक विदेशी भाषा हमारी राष्ट्रभाषा बनी रहे। भारत में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या मुश्किल से आधा फीसदी के लगभग है, अर्थात् दो-सौ में से केवल एक व्यक्ति अंग्रेज़ी जानता है। इसलिए डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में–

आधे फीसदी अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग देश के भाग्य विधाता नहीं बन सकते।

हिंदी भाषा को बोलने वालों की संख्या अब संसार में सबसे अधिक है। केन्द्रीय राज-काज और अन्तर्जातीय आदान-प्रदान के लिए उसका व्यवहार उचित है।

एक बंगाली विद्वान् की राय

डॉ० सुनीतिकुार चटर्जी, भारत के प्रसिद्ध भाषाविद् माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने अनेक बार हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने का विरोध किया है परन्तु सत्य कभी-कभी सिर चढ़कर बोलने लगता है।

ऐसी ही किसी सुन्दर मनःस्थिति में डॉ० चटर्जी ने राजस्थानी भाषा के प्रसंग में यह लिखा था ।

समग्र भारत की सांस्कृतिक एकता की प्रतीक हिंदी ही है । व्यवहार करने वालों और बोलने वालों की संख्या के क्रम के अनुसार उत्तरी चीनी और अंग्रेजी के बाद हिंदी आती है । हिंदी के पीछे आती हैं—रूसी, जर्मनी, जापानी, हिम्पानी, बंगला और फ्रेंच । पन्द्रह करोड़ मानवों की शिक्षा और संस्कृति की भाषा हिंदी है—चाहे अपने शुद्ध रूप में, चाहे अपने मुसलमानी (उर्दू) रूप में, जगत् की जनता के एक पांचवें अंश की राष्ट्रभाषा हिंदी ही है । मैं अपनी ओर से चाहता हूँ कि मेरे बंग भाषी भाई और बहिन अपनी माँ बंग भाषा की सेवा करते हुए हिंदी की सेवा में भी कुछ भाग लें और अखिल भारत की एकता को सुदृढ़ बनाने में सहायता दें ।

दृष्टव्य है कि डॉ० चटर्जी ने यह बात लगभग 60 वर्ष पूर्व लिखी थी । इस बीच हिंदी-भाषियों की संख्या कई गुणा हो गई है । सम्पूर्ण अहिंदी-भाषियों से हमारी भी यही प्रार्थना है ऐसा करने से ही देश, संस्कृति और एकता की रक्षा सम्भव है ।

26 जनवरी सन् 1965 को भारत की संसद् ने हिंदी को भारत की राष्ट्र भाषा तथा अंग्रेजी को सह-राष्ट्रभाषा घोषित किया था । इस घोषणा के उपरान्त दक्षिण भारत के एक प्रदेश तमिलनाडु (मद्रास राज्य) तथा बंगाल में हिंदी विरोधी प्रदर्शन और दंगे भड़क उठे । यहाँ स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने जनता में यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि अब तमिल, बंगला और अंग्रेज़ी की जगह केवल हिंदी ही पढ़नी और व्यवहार में लानी पड़ेगी । इस घातक प्रचार का वहाँ बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा । हमारी सरकार अकर्मण्य की तरह निरीह भाव से इस स्थिति को देखती रही । उससे यह करते न बन पड़ा कि वास्तविक उद्देश्य को स्पष्ट कर दक्षिण वालों के निर्मूल भय को दूर कर दे । परन्तु सरकार ऐसा क्यों करती, क्योंकि यह आग तो स्वयं उसी की लगाई हुई थी ।

हिंदी साम्राज्यवाद का हौआ स्वार्थी लोगों द्वारा खड़ा किया हुआ है हिंदी किसी पर भी जबरदस्ती नहीं लादनी चाहिए। इस प्रकार अंग्रेज़ी को भी किसी पर जबरदस्ती नहीं लादना चाहिए। एक सुगम मार्ग यह है कि प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाओं का प्रयोग बढ़ाकर वहाँ से अंग्रेज़ी को समाप्त किया जाये। उसके बाद केन्द्र से अंग्रेज़ी अपने-आप समाप्त हो जायेगी। इसके उपरान्त भारतीय जिस भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना स्वीकार कर लें, उसे ही देश की राष्ट्रभाषा बना दिया जाये।

राष्ट्रभाषा के रूप

राष्ट्रभाषा हिंदी का रूप कैसा रहे? यह भी एक विवादास्पद प्रश्न बना हुआ है। कट्टर हिंदी भक्त हिंदी को संस्कृत गर्भित बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरी ओर प्रगतिशील विचारक हिंदी के जन भाषी सरल रूप को कायम रखने की माँग उठा रहे हैं। भारत की अन्य प्रधान भाषाओं में संस्कृत के शब्दों के एक से रूपों का समान व्यवहार होता हैं इसलिये यदि हिंदी के राष्ट्रभाषा के रूप में संस्कृति-शब्दावली का प्रयोग किया जाये तो अनुचित नहीं होगा। परन्तु ऐसा करने से हिंदी का जनभाषी रूप दुर्बोध हो जाएगा और वह जनभाषा न रह कर एक कृत्रिम भाषा का रूप धारण कर लेगी। जिससे उसका अहित ही होगा। इसलिए संस्कृत शब्दावली का अधिक प्रयोग करते समय हमें अधिक सचेत रहना पड़ेगा। होना यह चाहिए कि हिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी के स्वाभाविक जनवादी रूप को विकसित होने दिया जाए तथा उसके राष्ट्रभाषा के स्वरूप में संस्कृत शब्दावली का प्रयोग अपेक्षित मान लिया जाये। ऐसा न हो कि हिंदी राष्ट्रभाषा बनकर कृत्रिम रूप धारण कर ले और उसका विकास रुक जाये। कृत्रिम भाषा विकसित नहीं रह पाती।

हिंदी का राष्ट्रभाषा का रूप उसके व्यावहारिक और साहित्यिक रूप से थोड़ा सा भिन्न रहेगा। राष्ट्रभाषा का रूप प्रायः स्थिर और अपरिवर्तनशील-सा रहता है, जब कि व्यावहारिक भाषा निरन्तर

विकसित होती रहती है। हिंदी वालों को इस बात से शंकित या आतंकित नहीं होना चाहिए। हिंदी कभी भी संस्कृत का सा अगतिशील रूप नहीं धारण कर पायेगी। यह सतत् विकासमान बनी रहेगी। क्योंकि उसकी प्रकृति आरम्भ से ही विकासशील रही है।

हिंदी की राष्ट्रव्यापी व्यापकता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि राजनीतिक दृष्टि से हिंदी के कट्टर विरोधी तमिलनाडु के फिल्म निर्माता हिंदी में दर्जनों फिल्में बनाते रहते हैं। मद्रास से विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाली बाल मासिक-पत्रिका 'चन्दा मामा' की प्रतियों की संख्या सबसे अधिक हिंदी की ही होती है।

6. हिंदी के विकास में मुसलमानों, सिक्खों एवं ईसाइयों का योगदान

हिंदी देश की करोड़ों लोगों की भाषा है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम पूरे देश को जोड़ने वाली भाषा है। यह तीर्थों और धार्मिक केन्द्रों की संवाद की भाषा है। हरिद्वार का कुम्भ हो या प्रयाग का महाकुम्भ अथवा नासिक का कुम्भ हो, कुरुक्षेत्र सूर्यग्रहण का मेला हो या वैष्णो देवी की यात्रा हो या जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) की यात्रा लोग परस्पर इसी भाषा के माध्यम से जुड़ते हैं। रामेश्वरम् से बद्रीनाथ, केदारनाथ तक लोगों की यही सम्पर्क भाषा है।

राजनीतिक दृष्टि से हिंदी को राष्ट्रव्यापी सारे भारत तक पहुँचाने में दिल्ली के मुस्लिम शासकों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।। खिलजी वंश के शासनकाल में उत्तर भारत में बंगाल तक का क्षेत्र इसके अधीन था। अतः उत्तर भारत के नगरों, कस्बों में, शासन केन्द्रों में दिल्ली और उसके आस पास क` हिंदी बोलने वाले लोगों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का आवागमन कई सदियों तक चलता रहा। अतः हिंदी उत्तर भारत के नगरों और कस्बों की सम्पर्क भाषा बन गई। दक्षिण भारत में भी मुस्लिम साम्राज्य का विस्तार होने पर हिंदी का प्रचार-प्रसार वहाँ तक फैल गया। अलाउद्दीन खिलजी ने 1265 ई० में देवगिरि पर आक्रमण किया तथा बाद के आक्रमणों द्वारा उसके शासनकाल में विन्ध्याचल से लेकर दक्षिणी समुद्र तक का प्रदेश दिल्ली के अधीन हो गया और उसके शासनकाल में ही खड़ी बोली हिंदी बोलने वाले हिन्दू और मुस्लिम कर्मचारी दक्षिण भारत में फैल चुके थे। बाद में 1327 ई० में मोहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि को बनाया। इस कारण हजारों हिंदी भाषी लोग दक्षिण भारत जा पहुँचे और वहीं रहने लगे। इस प्रकार हिंदी दक्षिण के आन्ध्र, कर्नाटक आदि प्रदेशों तक पहुँच गई।

हिंदी का विकास एवं प्रसार यहीं तक नहीं रुका। बाद में यहाँ अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा और बीदर में निजामशाही, आदिलशाही, कुतुबशाही आदि स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई। उन्होंने हिंदी को साहित्य की भाषा बनाया और राजकाज में स्थान दिया। वहाँ दक्खिनी हिंदी में विपुल साहित्य लिखा गया। इसके अधिकांश लेखक मुसमलमान थे। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व दक्षिण में हिंदी को राजभाषा का स्थान प्राप्त हो चुका था। इसका सारा श्रेय मुस्लिम शासकों को है।

आज हमारे देश के राजनेता, सांसद् एवं मंत्री स्वतंत्रता के 69 वर्ष पश्चात् देश की राजभाषा हिंदी में शपथ लेने से भी कांपते हैं, डरते हैं चाहे वे उत्तर के मंत्री/सांसद् हों अथवा दक्षिण भारत के मंत्री जबकि हिंदी दक्षिण में भी 600 वर्ष पहले राजकाज की भाषा/सम्पर्क भाषा बन चुकी थी। इन प्रतिष्ठित सांसदों को इतिहास से सीख लेनी चाहिए। मुसलमानों के इलावा सिक्ख गुरुओं ने भी हिंदी को अपनाया।

गुरु नानक से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह तक सभी गुरुओं ने हिंदी में रचनायें लिखीं। इस बारे में (1) वाणी गुरु गोबिन्द सिंह (2) वाणी गुरु अर्जुन देव (दोनों भाषा विभाग पंजाब, पटियाला द्वारा प्रकाशित क्रमशः 1963 एवं 1973) उल्लेखनीय है। गुरु गोबिन्द सिंह की वाणी अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उनका 'विचित्रनाटक' पठनीय है। डॉ० महीप सिंह के अनुसार सम्पूर्ण दशम ग्रंथ (पचास पृष्ठों को छोड़कर) गुरु गोबिन्द सिंह की विविध हिंदी रचनाओं का ही संग्रह है।

आज पंजाब से हिंदी के कई समाचार प्रकाशित होते हैं। स्वयं शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर द्वारा गुरुबाणी का प्रसार करने के लिए ''सुखमणी साहब'' जैसी कई पुस्तकें हिंदी में छापी गई हैं। यहाँ तक कि पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला ने 'श्रीगुरुग्रंथ-साहिब' 4 खंडों में शाब्दिक अर्थ सहित हिंदी में छपवाया है। हिंदी सबको जोड़ने वाली भाषा है।

हिंदी के राष्ट्रव्यापी स्वरूप एवं प्रसार को देखते हुए ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म प्रचार के लिए 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 19वीं सदी के आरम्भ से ही हिंदी को अपना लिया था। बाइबल के जितने संस्करण एवं प्रतियाँ हिंदी में छपी हैं शायद ही देश की किसी अन्य भाषा में छपी हों। बैंगलूर एवं मद्रास से निरन्तर हिंदी में ईसाई साहित्य छपता है। अन्य स्थानों से अलग छपता है।

इस प्रकार हिंदी बिना किसी भेदभाव के पूरे राष्ट्र की भाषा है जबकि अंग्रेज़ी देश में किसी प्रदेश, जिले, कस्बे या गांव की भाषा नहीं है फिर भी देश पर अंग्रेज़ी हावी है? अतः देश के राजनेताओं/ शासकों तथा सरकारों को देश की 100 करोड़ से ऊपर जनता की भाषाओं, राष्ट्रभाषा एवं भारतीय भाषाओं का सम्मान करना चाहिए।

7. हिंदी के विकास में आर्य समाज का योगदान

हिंदी अपने विकास के जिन विभिन्न सोपानों से होती हुई इस देश की राजभाषा के पद तक पहुँची है, इस में आर्य समाज का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा 10.4.1875 ई० में मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना हुई थी। ऋषि दयानन्द ने पराधीन भारत के लोगों में विदेशी दासता से मुक्त होने, उनमें स्वशासन और स्वभाषा की भावना जागृत करने में अद्वितीय योगदान दिया था। महर्षि दयानंद ने 'सत्यार्थप्रकाश' में लिखा है कि कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। यहीं से हमारी स्वराज्य स्थापना की भावना का सूत्रपात होता है जो आगे चलकर एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप ले लेता है। यही कारण है कि स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिनिधि आर्य समाज के कार्यकर्ता भी होते थे।

आर्य समाज ने जहाँ धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों, धर्म के नाम पर होने वाले मिथ्या आडम्बरों, मूर्तिपूजा, छुआछूत, बालविवाह आदि का विरोध किया और स्त्री शिक्षा सदाचार और वैदिक धर्म पर बल दिया। वही बढ़ते हुए पाश्चात्य प्रभाव को रोकने के लिए उन्होंने भारत के गौरवमय अतीत की ओर ध्यान आकर्षित करने का भी बीड़ा उठाया। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। अतः उन्होंने संस्कृत को ही अपने प्रचार का माध्यम बनाया। उनकी भेंट बंगाल के एक बड़े सामाजिक कार्यकर्ता श्री केशव चन्द सेन से हुई। उन्होंने दयानंद जी को सलाह दी कि वे अपना प्रचार कोलकाता में संस्कृत की अपेक्षा हिंदी में करें तो अधिक प्रभावपूर्ण होगा। उन्होंने तभी से अपने विचारों को प्रकट करने का माध्यम हिंदी को बनाया। यह घटना दयानंद के लिए वरदान सिद्ध हुई। दयानंद जी ने गुजराती होते हुए भी हिंदी को अपना

लिया और इस भाषा को आर्य भाषा का नाम दिया ।

स्वामी जी ने अपनी रचना 'सत्यार्थप्रकाश', 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका', 'संस्कार विधि', 'यजुर्वेद भाष्य' आदि ग्रंथों की रचना भी हिंदी में ही की । दयानंद जी द्वारा हिंदी को अपनाये जाने से हिंदी का प्रचार आर्य समाज का एक आवश्यक अंग बन गया । इनके अनुयाइयों ने भी हिंदी में ही व्याख्यान देने और हिंदी में ही अपनी रचनाएं करने का कार्य आरंभ कर दिया ।

दयानंद के तेजस्वी व्यक्तित्व और ओजस्वी भाषणों ने हिंदी को सारे उत्तरी भारत में लोकप्रिय बना दिया । आर्य समाज का प्रचार सबसे अधिक पंजाब में हुआ । वहाँ लाला लाजपतराय सरीखे महान् नेताओं और समाज सुधारकों ने आर्य समाज की शिक्षाओं को ग्रहण किया । इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि हिंदी को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सहायता मिली । शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज ने अनेक संस्थाओं की स्थापना की । लाला हंसराज के नेतृत्व में सारे पंजाब और समीपवर्ती क्षेत्रों में डी०ए०वी० स्कूलों का जाल सा बिछ गया । जहाँ हिंदी भाषा को प्रमुख स्थान मिला । फारसी और उर्दू के गढ़ माने जाने वाले इस प्रान्त में हिंदी की लोकप्रियता का कारण आर्य समाज का ही प्रभाव है । इसका श्रेय वहाँ के कर्मठ कार्यकर्ताओं, विशेष रूप से लाला लाजपत राय, भाई परमानंद, महात्मा मुंशीराम, पं० गुरुदत्त, लाला साईंदास, महात्मा हंसराज आदि कर्मठ समाज सुधारकों को ही जाता है ।

महात्मा मुंशी राम ने जहाँ गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की वहाँ महात्मा हंसराज ने डी०ए०वी० कॉलेज लाहौर की स्थापना 1.6.1886 ई० में की । लाला देवराज ने जालंधर में कन्या महाविद्यालय की नींव डाली । इसका सुपरिणाम यह हुआ कि गुरुकुलों में जहाँ हिंदी माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के सर्वांगीण क्षेत्रों से शिक्षा की व्यवस्था की गई, वहाँ डी०ए०वी० कॉलेजों और स्कूलों में वैदिक

सिद्धान्तों के विधिवत् अध्ययन का लाभ प्राप्त कर अंग्रेज़ी में निपुण युवक हिंदी में भी दक्षता प्राप्त कर सके। इस प्रकार हिंदी माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हुआ।

एक बार जब पंजाब में एक सज्जन ने महर्षि दयानंद से उनके सारे ग्रंथों का उर्दू में अनुवाद की अनुमति मांगी तो उन्होंने कहा, भाई, मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं–

जब कश्मीर से कन्या कुमारी तक अटक से कटक तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे। जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी वे इस आर्य भाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे। अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।

इससे पता चलता है कि वे हिंदी को कितना अधिक महत्व देते थे और सारे भारत में इसके प्रचार-प्रसार की इच्छा करते थे। हिंदी साहित्य के महान् आलोचक डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–

स्वामी दयानंद और उनके शिष्यों ने हिंदी तथा संस्कृति को नवजीवन दिया और हिंदी तथा संस्कृत के अध्ययन को बल।

दयानंद के प्रभाव से भारतीय जनमानस उद्वेलित हो उठा और भाषा, साहित्य तथा जन संचार पर इनका गहरा प्रभाव पड़ा। आर्य समाज के प्रबुद्ध और कर्मठ प्रचारकों, उपदेशकों, लेखकों आदि ने हिंदी को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। इससे खड़ीबोली पर आधारित हिंदी गद्य का आश्चर्यजनक विकास हुआ। हिंदी गद्य वास्तविक रूप में विविध विषयों की अभिव्यक्ति की सूक्ष्म वाहिका बनी।

हिंदी पत्रकारिता

आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की दिशा में क्रांतिकारी कार्य हुआ। उससे जहाँ हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचलन देश में प्रचुरता से हुआ, वहीं अनेक प्रबुद्ध लेखक और संपादक भी इसके द्वारा कार्यक्षेत्र

में आये । इस प्रकार हिंदी पत्रकारिता की सुदृढ़ नींव रखी गई, जिसका श्रेय आर्य समाज को ही जाता है–

महर्षि दयानंद के जीवनकाल में ही मेरठ से आर्य समाज के पहले पत्र 'आर्य-समाचार' का प्रकाशन आरंभ हुआ। तदुपरांत 'भारत सुदशप्रवर्तक', 'आर्य दर्पण', 'वेद प्रकाश', 'आर्य सिद्धान्त', 'आर्यवृत', 'परोपकारी', 'आर्य मित्र' 'भारतोदय', 'वीर अर्जुन' तथा 'मिलाप' आदि अनेक पत्र प्रकाश में आये। 'आर्य मित्र' तभी से उत्तरप्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र है। इस पत्र के ऐसे अनेक यशस्वी संपादक हुए जो हिंदी साहित्य जगत् में अपना विशेष स्थान रखते हैं।

इनमें पं० रुद्रदत्त, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बनारसी दास चतुर्वेदी, जयदेव विद्यालंकार डॉ० हरिशंकर शर्मा, ऋषिदेव विद्यालंकार आदि संपादक सम्मिलित हैं। प्रसिद्ध हिंदी आलोचक डॉ० सत्येन्द्र और कहानीकार रामचन्द्र श्रीवास्तव एवं पद्मश्री आचार्य क्षेम चन्द्र 'सुमन' को भी इसको संपादन में योगदान देने को गौरव प्राप्त है। हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ श्री पद्मसिंह शर्मा, स्वामी श्रद्धानंद, श्री नरदेव शास्त्री, डॉ० हरिशंकर शर्मा, विश्वम्भर सहाय प्रेमी, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति, सत्यकाम विद्यालंकार, महात्मा आनंद स्वामी, श्री क्षितीश वेदालंकार आदि पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता की महान् सेवा की। आज भी कई दैनिक साप्ताहिक और मासिक पत्र हिंदी माध्यम से जन संचार के साधन बने हैं। दिल्ली से ही श्री अशोक कौशिक, डॉ० सच्चिदानंद शास्त्री, पंडिता राकेश रानी तथा श्री सूर्य देव जी ने अनेक वर्षों तक क्रमशः आर्य जगत् सार्वदेशिक, जनज्ञान और आर्य संदेश का कुशल संपादन किया। आजकल श्री पूनम सूरी, आर्य जगत् (दिल्ली) श्री रामनाथ सहगल तथा अजय सहगल 'टंकारा समाचार', श्री विनय वीर 'हिंदी मिलाप' (हैदराबाद) तथा श्री हरवंश लाल कोहली आदि हिंदी विद्वान् हिंदी पत्रकारिता की श्रीवृद्धि कर रहे हैं।

'वीर अर्जुन' दैनिक भी इसी शृंखला की एक महान् कड़ी है ।

हिंदी साहित्य में योगदान

आर्य समाज का हिंदी साहित्य को सबसे बड़ा योगदान यह है कि इसने हिंदी गद्य को एक परिमार्जित गद्य शैली दी कि जिसमें ज्ञान विज्ञान के विविध विषयों की अभिव्यक्ति बहुत ही तर्कसंगत रूप में हो सकती थी । यह ऐसा दौर था जब भाषा में अपेक्षाकृत तत्सम शब्दों की खोज हुई और भाषा को संस्कृत निष्ठ रखते हुए भी सरल बनाने के प्रयास हुए । ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि आर्य समाज अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए शास्त्रार्थ विधि का सहारा ले रहा था जिसके लिए वेद, वेदांगों और प्राचीन ग्रंथों के उदाहरणों की अपेक्षा थी । फिर देश में हो रहे नव जागरण के साथ-साथ चलकर बढ़ रहे पाश्चात्य प्रभाव का भी प्रतिवाद करना था । इसके लिए यह आवश्यक था कि सारे देश में व्यापक रूप से समझी जाने वाली किसी आधुनिक भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाए । ऐसी भाषा केवल हिंदी ही थी जिसका आधार खड़ी बोली बनता जा रहा था । इसके विषय में महर्षि दयानंद सत्यार्थप्रकाश के दूसरे संस्करण की भूमिका में लिखते हैं–

> **जिस समय मैंने यह ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत में भाषण करने, पठन-पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण मुझको उससे पूर्व भाषा का विशेष परिज्ञान नहीं था, इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी । अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है । इसलिए इस ग्रंथ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है ।**

यह वह युग था जब हिंदी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके साथी खड़ी बोली को अपनाने का प्रयास कर रहे थे, क्योंकि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में उर्दू को राज्याश्रय प्राप्त हो जाने के कारण लोग हिंदी भाषा और नागरी लिपि को भूलते जा रहे थे । पंजाब में तो फारसी और उर्दू का बोलबाला था । आर्य समाज का प्रचार भी सर्व प्रथम पंजाब में ही अधिक हुआ । उर्दू भी खड़ी बोली पर ही आधारित

थी। इसलिए खड़ी बोली को ही आधार मानकर हिंदी को अपनाया जाना स्वाभाविक था। इस भाषा में आलोचना वाद-विवाद और शास्त्रार्थ की क्षमता अधिक थी। इसीलिए एक विशेष शैली का हिंदी गद्य में विकास हुआ और डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार –

भाषा का जो आदर्श भारतेन्दु ने स्थापित किया था वह अन्य अनेक कारणों के अतिरिक्त आर्य समाज के प्रबल प्रभाव के कारण बहुत दिनों के लिए लुप्त हो गया। भाव व्यंजना में भी इससे सहायता मिली और तर्क शैली के साथ-साथ में व्यंग्य और कटाक्ष करने की क्षमता का आविर्भाव हुआ। हिंदी भाषा और गद्य शैली का यह विकास अभूतपूर्व था इसलिए इसके साहित्यकारों ने तरह-तरह के विषयों पर लेखनी उठाई। तत्कालीन लब्धप्रतिष्ठ लेखकों, कवियों और नाटककारों पर यह प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का कहना है कि रीतिकाल के ठीक बाद वाले काल में हिंदी भाषी क्षेत्रों में जो सबसे बड़ी सांस्कृतिक घटना घटी वह स्वामी दयानंद का पवित्रवादी विचार था। इस युग के कवियों को शृंगार रस की कविता लिखते समय यह प्रतीत होता था जैसे स्वामी दयानंद पास ही खड़े सब कुछ देख रहे हैं।

आर्य समाज का हिंदी को एक बड़ा योगदान यह हुआ कि ''काशी नागरी प्रचारिणी सभा (1890 ई०) जैसी संस्था की स्थापना बनारस में हुई। श्री राम नारायण मिश्र ने जो आर्य समाज और महर्षि दयानन्द जी ने पक्के अनुयायी तथा भक्त थे, हिंदी को व्यावहारिक रूप देने के लिए और उसे 'राष्ट्रभाषा' के गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इस सभा ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया।

आर्य समाज ने जहाँ अनेक उत्कृष्ट विचारक, मनीषी, सुधारक और पत्रकार उत्पन्न किये, वहीं हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक यशस्वी लेखक, कवि और साहित्यकार प्रदान किए जिनकी कृतियाँ श्री

क्षेमचन्द सुमन के शब्दों में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में आकार ग्रंथ का स्थान रखती हैं ।

काव्य के क्षेत्र में आर्य समाज का अधिकतर झुकाव भजनोपदेशों की ओर ही रहा । अनेक प्रतिभाशाली गायकों और उपदेशकों ने समाजोत्थान, स्त्री शिक्षा, दलितोद्धार और राष्ट्रभक्ति के गीत लिखे । श्री नारायण प्रसाद 'बेताब' ने अपने नाटकों और प्रहसनों के गीत स्वयं लिखे । स्वामी भीष्म जी और पृथ्वी सिंह बेधड़क ने अनेक ओजस्वी गीत और भजन लिखे । इसके अतिरिक्त पं० नाथू शंकर शर्मा 'शंकर' ने जिनका नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान रखता है, अनेक काव्य रचनाएं की । उनकी ''अनुरागरत्न'', ''वायस विजय'' और ''गर्भ-रंडा-रहस्य'' आदि रचनाएं हिंदी काव्य की अमूल्य निधियाँ हैं । उनके सुपुत्र पं० हरिशंकर शर्मा भी एक सिद्ध कवि और साहित्यकार हैं जिन्होंने 'महर्षि महिमा', 'राजराज्य' और 'घासपात' की रचना की है । शंकर जी के शिष्य कर्ण कवि ने भी वीररस की कविताएं लिखी हैं । डॉ० सूर्य देव शर्मा, डॉ० मुंशीराम 'सोम', 'प्रकाश' कविरत्न पन्ना लाल 'पीयूष' ओंकार मिश्र 'प्रणव' हरिशरण श्रीवास्तव 'मराल' विमल चन्द्र विमलेश डॉ० विद्याभूषण 'विभू', यज्ञदत्त शर्मा, (देव पुरुष गांधी के रचयिता), पद्म श्री आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन', विद्यालंकार रत्न पारखी, चन्द्रभानु 'अंकिंचन', रघुवीर शरण मित्र आदि असंख्य कवियों ने अपनी रचनाओं से हिंदी काव्य की अभिवृद्धि की है । इनके अतिरिक्त नारायण प्रसाद 'बेताब', बाल मुकुन्द गुप्त, हरिकृष्ण प्रेमी, उदय शंकर भट्ट, उपेन्द्र नाथ 'अश्क', हंसराज 'कहवर' और सुदर्शन की हिंदी सेवाएं भी कुछ कम नहीं हैं । प्रेमचन्द और महापंडित राहुल सांकृत्यायन पर भी आर्यसमाज का अमिट प्रभाव था । सत्यपाल चुघ, श्याम जी कृष्ण वर्मा, डॉ० जयदेव आर्य, डॉ० प्रशांत वेदालंकार, गुरुदत्त, बाबूराम सक्सेना की हिंदी रचनाएं भी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं । डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० रघुवीर, डॉ० मुंशीराम 'सोम' शर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के योगदान को भी कम नहीं आंका जा सकता है ।

अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से सम्पन्न आधुनिक कवियों में पद्मश्री 'चिरंजीत' एक सशक्ति हस्ताक्षर रहे हैं, जिन्होंने नाटक,

काव्य और व्यंग्य के क्षेत्र में हिंदी को अपरिमित देन दी है। डॉ० नगेन्द्र भी सफल समालोचक और कवि थे। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने आलोचना और निबंध के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए हैं। श्री विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य के नक्षत्र हैं। डॉ० श्याम सिंह 'शशि' बहुआयामी कवि और लेखक हैं। आर्य समाज की विचार धारा से प्रेरित होकर साहित्य रचना में लगे हैं। लेखकों में डॉ० तुलसी राम, डॉ० सत्यदेव चौधरी, डॉ० भक्त राम शर्मा, डॉ० वेदप्रकाश बटुक, डॉ० सुधेश, डॉ० अनिसा कुमार वेदालंकार, डॉ० विजय कुमार मल्होत्रा, श्री गोपाल कृष्ण शर्मा, डॉ० भवानी लाल भारतीय आदि लेखक और कवि, अध्यापक और प्राचार्य हिंदी की सेवा में लगे हैं।

आर्य समाज की हिंदी साहित्य को देन न केवल उत्तरी भारत तक ही सीमित रही बल्कि इसके प्रभाव से दक्षिण में भी हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ा। महात्मा गांधी द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर अधिवेशन में दक्षिण भारत हिंदी प्रचारिणी सभा की स्थापना मद्रास में करने का निर्णय लिया गया था। उसे कार्य रूप में परिणत करने के लिए भी आर्य समाज के कार्यकर्ता सामने आए। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने वहाँ हिंदी कक्षाएं चलाई और सुपरिणामों से प्रेरित होकर लिखा था–

मैंने 14 वर्ष पूर्व हिंदी का जो बीज यहाँ बोया था वह आज एक महावृक्ष के रूप में परिणत हुआ है और उसकी छाया में सैंकड़ों हिंदी प्रचारक हिंदी साहित्य की चर्चा कर रहे हैं, यह देखकर मैं अत्यंत मुग्ध हूँ।

इसके बाद दक्षिण में जो हिंदी प्रचार आरंभ हुआ उसमें सैकड़ों हिंदी विद्वान् लेखक और कवि ही नहीं हिंदी पत्रकार भी सामने आए। इन सबका वर्णन यहाँ संभव नहीं हो पा रहा है। आर्य समाज के हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता के बाद हैदराबाद तो हिंदी और आर्य समाज प्रचार का एक प्रमुख केन्द्र ही बन गया। श्री यशधर विद्यालंकार के प्रयत्नों से उस्मानिया विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की

स्थापना हुई। 'अजंता', 'कल्पना', 'दक्षिण भारती' जैसी कई पत्रिकाएं हिंदी में प्रकाशित हुई। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'कल्पना' हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं में अपना प्रमुख स्थान रखती थी। दैनिक हिंदी मिलाप आज भी उसी गरिमा के साथ हैदराबाद से प्रकाशित हो रहा है। श्री युद्धवीर, श्री आरिगपूडि, श्री नरेन्द्र देव, श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त और श्री वन्दे मातरम् आदि विद्वानों का इस दिशा में श्लाघनीय सहयोग है। श्री मुनीन्द जी हैदराबाद से दक्षिण समाचार हिंदी में प्रकाशित कर रहे हैं।

आर्य समाज के कारण विदेशों में बसे भारतीय मूल के लोगों में भी हिंदी को लोकप्रिय बनाने में अद्‌भुत सहायता मिली। दक्षिण अफ्रीका में हिंदी सम्मेलन और हिंदी संघ जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त मारिशस, फीजी, सुरीनाम, गियाना आदि देशों में हिंदी सम्मेलन भी आयोजित हो चुके हैं। मारिशस में दो बार विश्व हिंदी सम्मेलन हुए हैं। वहाँ डी०ए०वी० कॉलेज के अतिरिक्त कई शिक्षा संस्थाएं आर्य समाज द्वारा स्थापित हैं और हिंदी का प्रचार-प्रसार कर रही हैं। इन संस्थाओं का माध्यम भी हिंदी है। आर्य रवि वेद प्रचारिणी सभा पोर्ट लुई, आर्य सभा मॉरिशस श्लाघनीय कार्य कर रही है। डॉ० उदय नारायण गंग, श्री सुख लाल रंग, डॉ० धर्मवीर घुरा, राज हीरामन आदि विद्वान् हिंदी साहित्यसृजन में सक्रिय हैं। आर्य समाज ने केवल भारत में अपितु विदेशों में भी हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में सराहनीय सहयोग दिया और इस भाषा को ज्ञान-विज्ञान के माध्यम के उपयुक्त बना कर इसे विश्व की आधुनिक भाषाओं की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। अतः राष्ट्र भाषा हिंदी के विकास में आर्य समाज का अनुपम एवं अनूठा योगदान है। इसके विषय में सतपाल पथिक जी की एक कविता देखिए–

हिंदी अपने देश की भाषा हिंदी से हम प्यार करेंगे।
हिंदी भाषा में ही अपने जीवन का व्यवहार करेंगे।
हिंदी अपने देश की भाषा .....

सारा भारत एक राष्ट्र है हिंदी इसकी भाषा है ।
हिंदी भारत का गौरव है जन-गण-मन की आशा है ।
सारी पृथ्वी के ऊपर हम हिंदी का विस्तार करेंगे ।
हिंदी अपने देश की भाषा . . . . . .
बिखरे मोती मिल जाते हैं एक सूत्र मिल जाने से ।
देश हमारा एक रहेगा हिंदी को अपनाने से ।
आदरणीय महापुष्षों के सपनों को साकार करेंगे ।
हिंदी अपने देश की भाषा . . . . . .
आशा क्या विश्वास है इक दिन हिंदी को सम्मान मिलेगा ।
माता को अपने बच्चों से माता का ही स्थान मिलेगा ।
हिंद देश में रहने वाले हिंदी का सत्कार करेंगे ।
हिंदी अपने देश की भाषा . . . . . .
आओ सारे हिंदी मिलकर हिंदी को अपनाएँ हम ।
जो हम वाणी से कहते हैं वह करके दिखलाएँ हम ।
उठो 'पथिक' सौगन्ध उठाकर हिंदी का प्रचार करेंगे ।
हिंदी अपने देश की भाषा . . . . . ।

8. राष्ट्रभाषा हिंदी के संबंध में विभिन्न महापुरुषों के विचार

अब विभिन्न महान् व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत हिंदी के विषय में उनके विचार विशेष दर्शनीय हैं–

1. **केवल हिंदी द्वारा ही सारे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।** –महर्षि दयानंद सरस्वती

2. **इस अभागे देश के अतिरिक्त सभ्य संसार में क्या और कोई अन्य देश भी है जहाँ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा के अतिरिक्त कोई विदेशी भाषा हो? जब हमारे बालक पढ़ते अंग्रेज़ी में गणित, पदार्थ विद्या सीखते विदेशी भाषा में तो इनमें मौलिक विचार की शक्ति कैसे जीवित रह सकती है? यदि किसी आंग्ल विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम फ्रेंच भाषा को करने या किसी जर्मन विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी करने का प्रस्ताव हो तो उसको पागलपन समझा जायेगा। परन्तु भारतवर्ष एक विचित्र देश है जहाँ हिन्दू बालकों के लिए शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बनाने वालों को हितैषी और बुद्धिमान समझा जाता है।**

   –स्वामी श्रद्धानंद

3. **राष्ट्रभाषा हिंदी के बिना राष्ट्र गूंगा है।** –महात्मा गांधी

4. **देश को एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा हिंदी ही हो सकती है।** –लाल बहादुर शास्त्री

5. **हिंदी भाषी इलाका भारत का सबसे बड़ा इलाका है। हिंदी भारतवर्ष के हृदय देश में स्थित करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा है।**

   –हजारी प्रसाद द्विवेदी

6. **भारत में एक भाषा हिंदी ही राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है।** –डॉ० ग्रियर्सन

राष्ट्रभाषा हिंदी का विभिन्न विद्वानों द्वारा इतना गुणगान करने पर भी आज स्वतंत्र भारत में हिंदी परित्यक्ता नारी की भाँति वनवासिनी बनी हुई है। उसका यह वनवास कब समाप्त होगा इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संसार के प्रत्येक देश में अपनी राष्ट्रभाषा है जिसमें सरकारी एवं गैर-सरकारी काम काज होता है। संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ नौकरशाही की भाषा कुछ और हो और जनता की कुछ और हो। भारतीय संविधान में तो हिंदी ही राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा है। वस्तुतः अभी भी अधिकतर कार्यालयों में काम-काज अंग्रेज़ी में होता है क्योंकि हम हिंदी में काम करना नहीं चाहते। वस्तुतः बाहर से हम स्वतंत्र है। परन्तु आत्मा अभी भी परतंत्र है।

यहाँ तक कि कुछ अंग्रेज़ी प्रेमियों का मत है कि हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी की अपेक्षा उचित शब्दावली का अभाव है परन्तु हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने 4.10.1986 ई० को संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में एक प्रभावशाली एवं ओजस्वी भाषण देकर संसार के अनेक देशों को आश्चर्यचकित कर दिया। इसी प्रकार हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने संयुक्त राष्ट्र संघ और विदेशों में हिंदी में प्रभावोत्पादक भाषण देकर हिंदी का गौरव बढ़ाया।

वस्तुतः हम देखते हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी की स्थिति संतोषजनक नहीं है। सत्य तो यह है कि हमारे देश की राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था में वह चाहे सरकारी हो या प्राइवेट–इन सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी भाषा का ही बोलबाला है। सभी लोग अंग्रेज़ी में काम करने के आदी बने हुए हैं। हिंदी भाषा में काम करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में भारतीय अफसरों की कोई भी भूमिका नहीं, क्योंकि वे नहीं चाहते कि देश का सरकारी काम काज हिंदी में हो। वे तो अंग्रेज़ी भाषा के बने रहने की वकालत ही करते हैं। हिंदी को आगे बढ़ाने उसके विकास एवं प्रचार-प्रसार पर विशेष बल देने की आवश्यकता है।

वस्तुतः भाषा का संबंध रोजगार से है और सरकारी/पब्लिक

क्षेत्रों में रोजगार तभी मिलता है जब लोगों ने अंग्रेज़ी भाषा का विशेष अनुशीलन किया हो तभी प्रतियोगी परीक्षा में उतीर्ण कर पाने में सफल हो पाते हैं, अन्यथा नहीं। प्रत्येक प्रतियोगी परीक्षा में अंग्रेज़ी का प्रश्न-पत्र अनिवार्य होता है। डॉक्टरी, इंजनियरिंग, कानून, न्यायालयों, विज्ञान की अधिकतर पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा में ही उपलब्ध हैं। क्योंकि इन पुस्तकों का अभी तक हिंदी भाषा में अनुवाद नहीं हुआ है। इन्हीं कारणों से आज राष्ट्रभाषा हिंदी की दशा अति शोचनीय बनी हुई है।

जब भी देश में अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी एवं भारतीय भाषाओं को लाने की बात चलती है तो अंग्रेज़ी के समर्थक, कुछ प्रतिष्ठित समाचारपत्र तथा अन्य प्रबुद्ध लोग यह कहना आरंभ कर देते हैं कि इससे देश टूट जाएगा। उत्तर और दक्षिण भारत में दरार पड़ जाएगी। परन्तु ये लोग यह भूल जाते हैं कि अंग्रेज़ी के कारण हिंदी एवं भारतीय भाषाओं का विकास रुक गया है। अंग्रेज़ी के कारण हम साहित्य, विज्ञान आदि क्षेत्रों में कोई मौलिक कार्य नहीं कर पाये हैं।

हम देखते हैं कि विश्व के 175 देशों में हिंदी की कीर्तिपताका फहरा रही है। वहाँ के विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन अध्यापन हो रहा है। हिंदी पर शोध कार्य का प्रकाशन हो रहा है। हिंदी समाचार पत्र व पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। दूरदर्शन में हिंदी में समाचारों का प्रसारण हो रहा है। इंटरनेट पर भी हिंदी छाई हुई है। भाषा वैज्ञानिकों के मतानुसार संसार में भाषा का क्रम–पहला हिंदी, दूसरा चीनी, तीसरा अंग्रेज़ी है।

9. हिंदी भाषा के विकास के मुख्य उपाय

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस प्रकार राष्ट्र भाषा हिंदी का विकास हो जिससे वह सच्चे अर्थों में देश की राष्ट्र भाषा बन जाये। ऐसा करने के लिए हमें अधोलिखित उपाय अपनाने होंगे–

(1) देश का सारा काम काज हिंदी भाषा में हो।

(2) अंग्रेज़ी भाषा की अनिवार्यता सभी क्षेत्रों से समाप्त की जाए। पहले हमें 5वीं कक्षा से अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती थी परन्तु अब आरम्भ से ही बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है। यह राष्ट्रभाषा का अपमान है। हम चाहते हैं कि आरम्भ से हिंदी भाषा पढ़ाई जाये इसके पश्चात् अंग्रेज़ी क्योंकि हिंदी बच्चे शीघ्र सीख सकते हैं न कि अंग्रेज़ी।

हम देखते हैं कि–

डैडी और मम्मी शब्दों का प्रयोग अपने-अपने घरों में बच्चों द्वारा आम किया जाता है। आप जाकर शब्दकोष देखना कि डैडी और ममी शब्दों के कितने गंदे अर्थ हैं। अंग्रेजी में डैडी का अर्थ है – A long nack crane अर्थात् लम्बी गर्दन का सारस और आयरिश भाषा में डैडी का अर्थ है–A progny of dog अर्थात् एक कुत्ते की नसल। आप ही बतलाएं कि जो पुत्र अपने पिता को डैडी कह कर पुकारता है इसका अर्थ यह हुआ कि वह अपने पिता को लम्बी गर्दन का सारस या कुत्ता कह कर सम्बोधन करता हैं इसी प्रकार ममी का अर्थ है मसाला लगा कर रखी हुई लाश ताकि वह खराब न हो जाये जैसे कि मिश्र में मुर्दों को रखने की प्रथा है।

अतः राष्ट्रभाषा की उन्नति के लिए डैडी और ममी शब्दों के स्थान पर बच्चों को माता-पिता कहना चाहिए। इसके अतिरिक्त हम ताया, चाचा, मामा, मासड़, फूफड़ और आयु में अपने बड़ों के लिए भी

अंकल शब्द का प्रयोग करते हैं । इसका कारण है कि अंग्रेज़ी भाषा में इन सब के लिये अंकल शब्द के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं है । हिंदी के विकास के लिये अंकल के स्थान पर हिंदी शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ।

(3) सभी वर्ग समुदाय के लोग एक जुट होकर हिंदी भाषा का प्रयोग करने को तैयार हो जाएं ।

(4) नौकरशाही के बीच अंग्रेजी मानसिकता का जो अधिपत्य है उसको समाप्त किया जाये ।

(5) अंग्रेज़ी भाषा को छोड़कर हिंदी भाषा को बोलने के लिए अभ्यस्त हो जायें ।

(6) देश के सभी स्कूलों व कॉलेजों में हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाये ।

(7) हिंदी की सभी पुस्तकें सस्ते दामों पर उपलब्ध करवाई जाये ।

(8) प्रति वर्ष प्रत्येक सरकारी कार्यालय में हिंदी के विकास के संबंध में नियमित रूप से समीक्षा की जानी चाहिये ।

(9) लोगों को हिंदी भाषा में कार्य करने के लिये प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना चाहिये ।

(10) हिंदी में काम करने वाले कर्मचारियों को पुरस्कृत एवं सम्मानित किया जाना चाहिये ।

(11) हिंदी न जानने वाले व्यक्तियों को नियमित रूप से हिंदी सिखाने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ।

(12) संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग न करके सरल एवं सरस भाषा का प्रयोग करना परमावश्यक है। क्योंकि संस्कृतनिष्ठ भाषा साधारण व्यक्ति आसानी से नहीं समझ सकता । जैसे सुखालय के स्थान पर अस्पताल और उपायुक्त के स्थान पर डी०सी० शब्दों का प्रयोग

उपयुक्त है । मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जो हिंदी प्रेमी संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते हैं वे राष्ट्र भाषा हिंदी के घोर शत्रु हैं क्योंकि इससे साधारण व्यक्ति हिंदी को नहीं समझ सकता है और ऐसा करना हिंदी के विकास में बहुत बड़ी बाधा है । अतः संसार के सब हिंदी प्रेमियों से सविनय निवेदन है कि वे सरल एवं सरस हिंदी का प्रयोग करें ताकि इससे अधिक से अधिक लोग समझ सकें । हमें अंग्रेज़ी व उर्दू भाषाओं के प्रचलित शब्दों का भी इस भाषा को सरल व आकर्षक बनाने के लिए प्रयोग करना चाहिए तभी इसका भविष्य उज्जवल होगा ।

स्वामी रामदेव जी लिखते हैं–

हमारे लिये राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं यथा गुजराती, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, पंजाबी आदि भाषाओं का ज्ञान रखना उत्तम बात है । परन्तु अन्य देश की भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग करना घोर अपमान व लज्जा की बात है । विश्व का कोई भी सभ्य देश अपने नागरिकों को विदेशी भाषा में शिक्षा नहीं देता ।

–जीवन दर्शन पृ० 54

(13) मैं भी पिछले कई वर्षों से हिंदी में पुस्तकें लिखकर निःशुल्क भारत के मुख्य-मुख्य आर्य समाजों, पुस्तकालयों एवं स्वाध्यायशील व्यक्तियों में बाँट रहा हूँ ताकि राष्ट्रभाषा हिंदी का विकास हो ।

यहाँ तक कई व्यक्ति राष्ट्रभाषा हिंदी की उपेक्षा करके राज्य भाषा को प्राथमिकता देते हैं जोकि राष्ट्र एकता के हित में नहीं है । जैसे महाराष्ट्र विधान सभा में अबू आजमी नामक एक सदस्य के राष्ट्र

भाषा हिंदी में शपथ लेनी चाही तो महाराष्ट्र नव निर्माण सेना के राम कदम नामक विधायक ने उसे थप्पड़ मारा। परन्तु अबू आसिम आजमी नामक विधायक ने राष्ट्रभाषा हिंदी में ही शपथ ग्रहण की। विधान सभा में काफी झगड़ा हुआ जिसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र नवनिर्माण के चार विधायकों को 4 वर्ष के लिये विधानसभा से निलंबित कर दिया गया। वस्तुतः यह अबू असिम आजमी का अपमान नहीं अपितु राष्ट्र भाषा हिंदी एवं सारे राष्ट्र का अपमान है। राष्ट्रभाषा हिंदी की प्रगति के लिये ऐसे व्यक्ति को सख्त से सख्त दंड मिलना चाहिये क्योंकि जो व्यक्ति राष्ट्रभाषा हिंदी से प्यार नहीं करते वे राष्ट्र से क्या प्यार करेंगे। मुनिश्री तरुण सागर जी फरमाते हैं–

हिंदी राष्ट्रभाषा है। हिंदी का अपमान राष्ट्र का अपमान है। मुझे मराठी नहीं आती लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि मैं मराठी का विरोधी हूँ। मराठी महाराष्ट्र की मुख्य भाषा है। हमें अपनी भाषा पर गर्व होना चाहिये। लेकिन यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि हिंदी माँ है और मराठी मौसी। माँ का स्थान मौसी से हमेशा ऊँचा होता है।

–कड़वे वचन भाग 6 पृ० 78

10. हिंदी भाषा का विश्व भाषा बनने का सपना

दुनियाँ के सबसे बड़े मंच पर हिंदी को प्रतिष्ठित करने की कवायद पिछले 40 वर्षों से जारी है। देश-विदेश में सरकारी एवं गैरसरकारी मंचों पर कई बार प्रस्ताव पारित किए जा चुके हैं पर वे हिंदी को वांछित दर्जा नहीं दिला सके।

सर्वप्रथम वर्ष 1968 में केन्द्रीय हिंदी समिति की बैठक में संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषाओं में हिंदी को स्थान दिलाने का प्रस्ताव लाया गया था। इसके बाद विदेश मंत्री की अध्यक्षता में ग्यारह सदस्यों की समिति भी इस प्रस्ताव को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए गठित की गई।

10-1-1975 ई० को नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में मारीशस के सरकारी प्रतिनिधि मंडल के नेता दयानंद वसंत राय ने संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता देने का प्रस्ताव रखा था, जिसका समर्थन तत्कालीन सोवियत संघ (अब रूस) के प्रतिनिधिमण्डल के नेता डॉ० ईपी येलिशेन तथा विश्व के विभिन्न देशों से आए प्रतिनिधियों ने किया था। तब से अब तक कई विश्व हिंदी सम्मेलनों में इस प्रस्ताव को पारित किया जा चुका है परन्तु अभी तक सार्थक परिणाम सामने नहीं आये हैं। इसका कारण प्रस्ताव के कार्यान्वयन के प्रति हमारा दृष्टिकोण भावनात्मक अधिक और तथ्यपरक कम है। हम यह तर्क देते रहे हैं कि चूंकि हिंदी विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की मुख्य भाषा है तथा बोलने वालों की संख्या की दृष्टि सर्वप्रथम स्थान है। अतः इसे संयुक्त राष्ट संघ में आधिकारिक भाषा का स्थान मिलना चाहिए।

इस तारतम्य में अरबी भाषा का उदाहरण भी दिया जाता है जिसे वर्ष 1973 में संयुक्त राष्ट्र की छठवीं आधिकारिक भाषा बनाया गया था। लेकिन हम इस तथ्य को नजरअंदाज कर देते हैं कि संयुक्त

राष्ट्र के 19 सदस्य देश पहले से ही महासभा एवं अन्य संगठनों में अरबी भाषा का प्रयोग करते थे तथा अरबी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति के तीन वर्ष तक इस मद पर पूरा व्यय इन देशों ने वहन किया था। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र में अन्य देशों की बात तो छोड़िये, हमारे देश के प्रतिनिधि अंग्रेजी का ही प्रयोग करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के 71 वर्षों के इतिहास में केवल अटल बिहारी वाजपेयी, श्याम नंदन मिश्र तथा पी०वी० नरसिम्हाराव ने महासभा के अधिवेशनों में हिंदी में भाषण दिये।

संयुक्त राष्ट्र के सात अंतर्राष्ट्रीय संगठनों में केवल यूनेस्को के अधिवेशनों में अर्जुनसिंह तथा डॉ० मुरली मनोहर जोशी एवं अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में सत्यनारायण जटियरा ने हिंदी में भाषण दिये थे। भारत की ओर से हम दावा तो करते हैं कि नेपाल, भूटान, मारीशस, सुरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना आदि देश हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने में हमें समर्थन देंगे, किंतु ये देश भी संयुक्त राष्ट्र संघ में कभी हिंदी का प्रयोग नहीं करते। 24-10-1945 ई० में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ ही अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी, चीनी और स्पेनिश को विश्व संस्था की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया गया था। वर्ष 1973 में अरबी को आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त होने के पश्चात् कई वर्षों से भारत के अलावा जापान, जर्मनी और इजरायल जैसे अनेक देश भी अपनी भाषाओं को यह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन देशों ने संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में अनुवाद सुविधा की भी व्यवस्था की है, जहाँ उनके प्रतिनिधियों को सभी दस्तावेजों की प्रति संबंधित देशों की भाषाओं में उपलब्ध कराई जाती है। इन देशों के सभी प्रतिनिधि वहाँ अपने-अपने देश की भाषाओं में ही विचार व्यक्त करते हैं। परन्तु भारत सरकार की ओर से ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्याविधि नियमावली के नियम 51 में संशोधन करना आवश्यक होता है। यह संशोधन तभी संभव है जब इसके कुल सदस्यों देशों (193) में से आधे से अधिक अर्थात् लगभग 97 देश हमारे प्रस्ताव का समर्थन करें। इस समर्थन को प्राप्त करने के लिए विदेश मंत्रालय की ओर से एडवोकेसी पेपर सभी सदस्य राष्ट्रों को भिजवाना होता हैं एडवोकेसी पेपर सदस्य राष्ट्रों से समर्थन प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि इसमें दर्शाए तथ्यों के आधार पर ही सदस्य राष्ट्र समर्थन का निर्णय लेते हैं। विडम्बना यह है कि वर्षों के परिश्रम के उपरांत भी अब तक यह पेपर संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों के पास समर्थन के लिए नहीं भेजा जा सका है। हाल ही में एडवोकेसी पेपर का प्रारूप दिल्ली के एक पत्रकार से तैयार करवाया गया है। अब इस पेपर को विदेश मंत्रालय द्वारा गठित उपसमिति ने अंतिम मोहर लगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र स्थित भारत के स्थायी मिशन को भेजा गया है।

इसी बीच 4-1-2007 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में सम्पन्न केन्द्रीय हिंदी समिति की बैठक में संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प फिर दोहराया गया है लेकिन एडवोकेसी पेपर के माध्यम से समर्थन जुटाने में राजनयिक पहल और राजनीतिक इच्छाशक्ति की भी अत्यधिक आवश्यकता होगी।

संसार के अनेक देश हमसे यह प्रश्न पूछेंगे कि यदि भारत में ही हिंदी का प्रयोग नहीं होता है तो संयुक्त राष्ट्र में हिंदी की क्या उपयोगिता होगी? इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि देश के

कामकाज में हिंदी का आधिकारिक प्रयोग किया जाए ।

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने पर प्रारंभिक व्यय के अलावा प्रतिवर्ष अनुमानतः 13 से 15 मिलियन डालर खर्च करने होंगे । इस संबंध में गांधीजी द्वारा स्थापित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अध्यक्ष मधुकरराव चौधरी भी विशेष रूप से सक्रिय हैं और वे प्रधानमंत्री से भेंट कर यह आश्वासन प्राप्त कर चुके हैं कि इस कार्य में धन कोई बाधा नहीं है । संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की सदस्यता हासिल करने के समान ही यह कार्य असंभव नहीं, किंतु चुनौतिपूर्ण अवश्य है ।

11. हिंदी को हिंदी वालों ने अंग्रेज़ी का दास बनाकर रख दिया

अंग्रेज़ी के समर्थक यह कुतर्क देते हैं कि हिंदी में राजतंत्र चलाना संभव ही नहीं है। इस संदर्भ में इसराईल का उदाहरण देना उपयुक्त होगा। जब इसराईल बना तो उसमें बसने के लिए दुनियाँ के विभिन्न देशों से यहूदी आए। उनकी भाषाएं भिन्न-भिन्न थी। संस्कृति भी भिन्न थी। तब यह समस्या उत्पन्न हुई कि इस नए राष्ट्र की राजभाषा क्या हो? इसराईली संसद ने काफी सोच-विचार के बाद एक मृतभाषा हिब्रू को राजभाषा बनाने का फैसला लिया। उस समय हिब्रू में न तो कोई शब्दावली ही उपलब्ध थी और न ही इसका कोई टेलीप्रिंटर और टाइपराइटर ही था। यहाँ तक कि हिब्रू का छापाखाना भी मौजूद न था। एक भी पुस्तक इसमें उपलब्ध नहीं थी।

अंग्रेज़ी के भक्त यह तर्क देते हैं कि अंग्रेज़ी विश्व में सम्पर्क की मुख्य भाषा है। यदि हम इसे नहीं जानेंगे तो विश्व से हमारा सम्पर्क टूट जायेगा—जबकि सच्चाई यह है कि ग्रेट ब्रिटेन में चार भाग हैं जोकि इंग्लैंड, आयरलैंड, वैल्स, स्काटलैंड कहलाते हैं। इनमें से इंग्लैंड की ही भाषा अंग्रेज़ी है। आयरलैंड में आयरिश, स्काटलैंड में स्काटिश और वैल्स में वैलिश भाषा बोली जाती है। ब्रिटेन के रहने वाले ही दो-तिहाई लोग इंग्लिश बोलना अपमान समझते हैं। यही स्थिति यूरोप के अन्य देशों की भी है। अमेरिका में स्पेनिश का बोलबाला है। अंग्रेज़ी का वर्चस्व उन्हीं देशों में आज भी चला आ रहा है जोकि कभी ब्रिटिश साम्राज्य का अंग हुआ करते थे। हम हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी ही अंग्रेज़ी को सीने से लगाये हुए हैं।

हिन्दुस्तान के अंग्रेजी प्रेमी यह भी तर्क देते हैं कि अंग्रेज़ी वैज्ञानिक अनुसंधान की भाषा है अगर हमने इसे न पढ़ा तो हम विज्ञान की प्रगति के क्षेत्र में पिछड़ जाएंगे, जबकि हक़ीक़त यह है कि जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी, रूसी, वैज्ञानिक क्षेत्र में अंग्रेज़ों से काफी आगे हैं। उनके वैज्ञानिक जब अंग्रेज़ी जाने बिना वैज्ञानिक अनुसंधान कर

सकते हैं तो हिंदी में वैज्ञानिक शिक्षा-दीक्षा क्यों नहीं हो सकती। क्या यह अंग्रेजी की गुलामी का परिचायक नहीं है। हम आखिर कब तक अंग्रेजी की गुलामी का बोझ ढोते रहेंगे।

इसके बावजूद संसद् का तीन-चौथाई कामकाज अंग्रेज़ी में ही होता है। दुःखद बात तो यह है कि अहिंदी क्षेत्र के सदस्य तो हिंदी में बोलने का प्रयास करते हैं जबकि हिंदी भाषी सदस्य अंग्रेज़ी बोलने में गौरव अनुभव करते हैं। यह जुदा बात है कि इन सदस्यों के भाषण अशुद्ध अंग्रेज़ी का लज्जाजनक नमूना होते हैं। यह बेचारे सांसद अंग्रेज़ी में इसलिए बोलते हैं क्योंकि वह हीन भावना का शिकार होते हैं। यह प्रचार किया जाता है कि गैर-हिंदी क्षेत्रों में हिंदी का प्रबल विरोध है इसलिए हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने में कठिनाई है, जबकि सच्चाई यह है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने में गैर-हिंदी प्रदेशों के नेताओं का योगदान सबसे अधिक है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग सबसे पहले दो बंगालियों केशवचंद्र सूर और राजाराम मोहन राय ने की थी।

सुभाष चन्द्र बोस की सारी शिक्षा दीक्षा अंग्रेज़ी स्कूलों में हुई मगर उन्होंने सदा अपने भाषण हिंदी में ही दिए। जब बैंकाक में आज़ाद हिंद सरकार बनी तो नेताजी ने उसके सारे फरमान हिंदी में ही जारी किये। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी गुजराती होते हुए भी हिंदी प्रेमी थे। महर्षि दयानंद ने अपने सारे ग्रंथों की रचना राष्ट्र भाषा हिंदी में की। उनके प्रवचन सदा हिंदी में होते थे। बाल गंगाधर तिलक, दामोदर विनायक सावरकर मराठी होते हुए भी हिंदी प्रेमी थे। स्वामी रामतीर्थ, भगत पूर्ण सिंह, चंद्र दत्त शर्मा गुलेरी, संत राम बी०ए० ने पंजाबी होते हुए भी हिंदी में ही अलख जगाई। महात्मा गांधी की प्रेरणा से राजगोपाल आचार्य के दक्षिण में हिंदी के प्रचार के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गठित की जोकि आज भी तमिलनाडु, केरल, आंध्र और कर्नाटक में हिंदी के प्रचार के कार्य में जुटी हुई है। हिंदी का विरोध सिर्फ तमिलनाडु में राजनीतिक कारणों से हो रहा है।

सबसे विशेष बात तो यह है कि हमारे लीडर ढोंग तो हिंदी प्रेमी होने का रचते हैं मगर बच्चों को शिक्षा के लिए अंग्रेज़ी स्कूलों में भेजते हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार में डा० राम मनोहर लोहिया के योगदान को कौन भुला सकता है। उनके शिष्य चाहे वे देश के किसी भी क्षेत्र के रहने वाले हों केवल हिंदी में ही बोलते थे। डॉक्टर लोहिया अंग्रेजी के उच्च कोटि के विद्वान् थे। मगर संसद् और उसके बाहर सदा भाषण राष्ट्रभाषा हिंदी में ही दिए। लोहिया के शिष्य भी हिंदी के प्रति पूरी तरह से समर्पित हैं।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना भी जरूरी है कि देश के शासक वर्ग की कमजोरी के कारण भले ही हिंदी राजभाषा न बन पाई हो मगर फिल्मों और टैलीविजन चैनलों के कारण वह जन-जन की भाषा जरूर बन गई है। हिंदी को सबसे अधिक हानि हिंदी के मठाधीशों ने पहुँचाया जोकि बोगस संस्थाएं बना कर राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार की आड़ में सरकार से मिले अरबों रुपये डकार गये।

अतः उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रभाषा हिंदी की दशा आज के संदर्भ में उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि होनी चाहिये थी। फिर यह प्रगति के पथ पर अग्रसर हो और इसका भविष्य उज्ज्वल एवं उत्तम हो इसके लिए हमें दृढ़ संकल्प और साहस की परमावश्यकता है। महर्षि दयानंद ने सत्य ही कहा था—

एक दिन आयेगा जब आर्यभाषा न केवल आर्यावर्त की अपितु विश्व की भाषा बनेगी।

इस पर हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने कितना सुन्दर लिखा है—

बनने चली विश्व भाषा जो अपने घर में दासी,
सिंहासन पर अंग्रेज़ीमय, लखकर दुनियाँ हांसी।
लखकर दुनियाँ हांसी हिंदी वाले हैं चपरासी,
अफसर सारे अंग्रेज़ीमय, अवधी हो मद्रासी,
छोड़ो तुम अब विश्व की चिन्ता।
पहले घर में अंग्रेज़ी के गढ़ को तोड़ो।।

श्री सुभाष चन्द्र गुप्ता की 'कविता भूल गए अपनी ही संस्कृति' की निम्नलिखित पंक्तियाँ वर्तमान में हिंदी की दशा को स्पष्ट दर्शाती हैं–

अंग्रेज़ी भाषा को देखो, भूत हुआ जब हम पै सवार ।
मात-पिता को कहने लगे हम मम्मी, डैडी हो लाचार ।
राम को कहने लगे रामा और कृष्ण को बना दिया कृष्णा ।
अर्जुन को जब कहेंगे अर्जुना, हनुमान को हनुमाना ।
व्हिस्की की बोतल ने बुद्धि का कर दिया है बंटादार ।
भूल गये अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

प्रातः काल उठकर हम सब ईश्वर का वन्दन करते थे ।
मात-पिता और तात सभी का अभिनन्दन हम करते थे ।
आज प्रातः चाय रानी को, होता पहले नमस्कार ।
धार्मिक ग्रंथ न फिर पढ़ते, बस पढ़ते प्रातः का अखबार ।
ईश्वर स्तुति स्वाध्याय भूलकर, कैसे सुधरेगा आचार ।?
भूल गये अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

मैकाले का जादू चल गया, वह छलिया हम सबको छल गया ।
केवल शक्ल से रहे भारती, दिल से हमें अंग्रेज़ कर गया ।
टिट बिट इंग्लिश में करते हैं, हिंदी शब्दों से डरते हैं ।
जगते, सोते, उठते बैठते, इंग्लिश कल्चर पर मरते हैं ।
अंग्रेज़ीयत का जहर मिटे, हो भारतीयता का संचार ।
भूल गये अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

रूसी बोले रूसी भाषा, चीनी बोले चीनी भाषा ।
जर्मन अपनी जर्मन बोले, जापानी जापानी भाषा ।
फिर क्यों भारतीय छोड़ के अपनी, बोले एक विदेशी भाषा ।

पचास बरस में भी न सीखी, हमने अपनी राष्ट्रभाषा ।
अब तो नींद से जागें, राष्ट्रभाषा से करें प्यार ।
भूल गए अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

कहता कौन विज्ञान की शिक्षा, इंग्लिश बिना असंभव है ।
संभव नहीं यदि भारत में, दुनियाँ में क्यों संभव है ।
पहुँचे क्यों विज्ञान शिखर पर, बिन इंग्लिश के रूस जापान ।
चीन, जर्मनी, फ्रांस व यूरोप के कितने ही देश महान् ।
इंग्लिश तो नहीं करने देती, मौलिक चिन्तन और विचार ।
भूल गए अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

स्वाभिमान हमें राष्ट्रभाषा का, हर इक दिल में जगाना है ।
अंग्रेजी का भूत सवार जो, उसको दूर भगाना है ।
हिंदी भाषा बनी जो दासी, उसको मान दिलाना है ।
हिंदी माँ की उतार आरती, महारानी इसे बनाना है ।
'सुभाष' गूँजा दो धरती अम्बर, कर हिंदी की जय-जयकार ।
भूल गये अपनी ही संस्कृति, भारतवासी नर और नार ।।

उपरोक्त विवेचन व विश्लेषण से यह निष्कर्ष एवं निचोड़ निकलता है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है और यह भारत के विभिन्न हिंदी राज्यों जैसे हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि की राज्य भाषा भी है । यह भाषा भारत में ही नहीं अपितु समूचे विश्व में सब से अधिक बोली जाती है । परन्तु यह बड़ी लज्जा की बात है कि हम अंग्रेज़ी भाषा को भी बंदरिया के मरे हुये बच्चे की भाँति गले लगाये बैठे हैं । यह बात लिख कर मैं अंग्रेजी भाषा का विरोध नहीं कर रहा हूँ अपितु देशावासियों से मेरा यह निवेदन है कि वे चाहे जितनी भी भाषाएँ पढ़े परन्तु प्राथमिकता उन्हें राष्ट्रभाषा हिंदी को देनी चाहिए । ऐसा न करना सारे राष्ट्र का अपमान होगा । हिंदी को प्राथमिकता देकर ही हम भारतीय इसका भविष्य उज्ज्वल कर सकेंगे ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी (आपके हाथ में है)

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)